-: चतुर्थ अध्याय :-

केशव के 'वीरसिंह' की परिस्थिति

चतुर्थ अध्याय

'नंददास के भँवरगीत की गोपियाँ'

नंददासजी का 'भँवरगीत' एक विरह काव्य है। इसमें नंददासजी ने गोपियों के विरह का चित्रण किया है। भ्रमरगीत काव्य-परंपरा के माध्यम से अनेक कवियों ने विरह वर्णन को अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। इन कवियों ने इस परंपरा के लिए 'श्रीमद्भागवत' के दशमस्कंध का आधार लिया है। नंददासजी ने भी भागवत का आधार लेकर अपनी गोपियों के विरह का चित्रण किया है। 'भँवरगीत' में नंददासजी ने एक ओर सगुण-निर्गुण में संघर्ष दिखलाया है, तो दूसरी ओर गोपियों के विरह - वर्णन को चित्रित किया है। नंददासजी के 'भँवरगीत' का आकार बहुत छोटा है। इसमें उन्होंने सूरदासजी की तरह नंद, यशोदा, राधा, ग्वाल आदि के विरह को चित्रित नहीं किया है, तो सिर्फ गोपियों के विरह वर्णन को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

वास्तव में 'भँवरगीत' यह चरित-काव्य नहीं है। वह भावना काव्य या सैद्धांतिक काव्य है। अत: कवि ने पात्रों का उपयोग सिद्धांतों को प्रकट करने अथवा विशेष भावना को पूर्ण करने के लिए ही किया है। नंददासजी के 'भँवरगीत' के मुख्यत: दो उद्देश्य हैं -- १) सगुण ब्रह्म की निर्गुण ब्रह्म पर विजय दिखलाना २) गोपियों की विरह - भावना का चित्रण करना। नंददासजी अपनी गोपियों के द्वारा इन उद्देश्यों को स्पष्ट करने में पूर्णत: सफल बन गये हैं।

नंददासजी की गोपियाँ भोली - भाली नहीं हैं। वे ब्रह्म, माया, जीव, जगत् के तत्वों को अच्छी तरह से जानती हैं। इसकारण वे अपने तर्कों के द्वारा उद्धव को आसानी से पराजित कर देती हैं। उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म

का संदेश देने के लिए आये थे । गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म संबंधी विचारों का वल्लभ - संप्रदाय के सिद्धांतों के आधार पर खण्डन कर देती हैं। इसके साथ ही गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपना अनन्य प्रेम भी व्यक्त करती हैं। नंददासजी ने 'भँवरगीत' के पूर्वार्ध में अपने दार्शनिक विचार व्यक्त किये हैं, तो उत्तरार्ध में गोपियों की विरह - भावना का चित्रण किया है । 'भँवरगीत का उत्तरांश गोपियों के प्रेम से परिपूर्ण है, अत: समग्रतामूलक दृष्टि से यह मन्तव्य प्रकट किया जा सकता है कि भँवरगीत निर्गुण - सगुण से ओत - प्रोत दार्शनिक चर्चा का ही ग्रंथ नहीं, प्रेमाभक्ति की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोर्मियों से तरंगित कृष्ण-प्रेम-रसामृत का मानसरोवर भी है । गोपियों की भावनाएँ उस मानसरोवर की साकार ऊर्मियाँ हैं, जिसमें उद्धव जैसे परम ज्ञानी आकंठ निमग्न हो, ज्ञान की दुविधा से मुक्त हो, भक्त पद के अधिकारी बन गये ।' [1]

श्रीकृष्ण गोकुल छोडकर मथुरा चले जाते हैं। इधर गोपियाँ कृष्ण के प्यार में तडपने लगती हैं। इसी विरह को दूर करने के लिए कृष्ण अपने मित्र उद्धव को गोकुल भेज देते हैं।

'भँवरगीत' की गोपियाँ कृष्ण की प्रेमिका हैं। उनका पूरा जीवन कृष्ण के प्रेम में ही बीता है । गोपियों के नयन, वचन, मन और प्राणों में कृष्ण समाये हुए हैं। नंददासजी के 'भँवरगीत' का अध्ययन करने पर गोपियों की निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं --

१) गोपियों की सर्वगुणसंपन्नता --

उद्धव गोकुल जाते ही शीघ्रता से निर्गुण ब्रह्म का उपदेश नहीं देते । वे प्रथम गोपियों की प्रशंसा करते हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह योग्य भी है कि जिसके सामने कुछ निवेदन करना हो, तो पहले उसकी प्रशंसा करनी चाहिए । उद्धव बाद में अपनी बात सुनने के लिए कहते हैं। ये गोपियाँ रूप, गुण, शील से युक्त हैं। उनका स्वभाव, लावण्य तथा आचरण बहुत ही सुन्दर है । वे सभी गुणों की खान हैं। इन गुणों के सिवा गोपियों के पास प्रेमी हृदय भी है । साथ ही वे प्रेम की ध्वजा याने प्रेम - मार्ग की प्रेमिकायें हैं। वे प्रेम का गौरव

बढ़ानेवाली हैं। प्रेम का आदर्श ऊँचा करनेवाली हैं। वे सभी ओर आनंद रस फैलानेवाली हैं। रस-रूप कृष्ण की आनंद प्रसारिणी शक्ति होने के कारण उद्धव उन्हें 'रस - रूपिणी' भी कहते हैं। ये गोपियाँ सुखों को उत्पन्न करनेवाली भी हैं। श्रीकृष्ण के साथ नवीन वृंदावन के कुंजों में विलास करनेवाली ये गोपियाँ हैं --

"ऊधौ को उपदेस सुनौ ब्रज-नागरी ।
रूप,सील,लावन्य सबै गुन आगरी ।।
प्रेम धुजा, रसरूपिनी,उपजावनि सुख-पुंज ।
सुन्दर स्याम - विलासिनी,नव वृंदावन कुंज ।।
सुनौ ब्रजनागरी ।।"[२]

२) गोपियों की अतिथ्यशीलता --

अतिथि-सत्कार के लिए ब्रज-भूमि सदैव प्रसिद्ध है। 'भँवरगीत' की गोपियाँ भी उद्धव का उचित अतिथि-सत्कार करके इस परंपरा का पालन करती हुई दिखाई देती हैं। उद्धव कृष्ण का मित्र है, यह जानने के बाद उन्होंने जल्द ही उद्धव का स्वागत किया। उन्होंने पहले उद्धव को अर्घ्य दिया। उसके बाद उद्धव को आसन पर बिठाकर उनकी प्रदक्षिणा की। कृष्ण से अभिन्न समझकर बहुत प्यार से वे उद्धव का सत्कार करती हैं। बाद में उन्होंने हँसते हुए कृष्ण के समाचार पूछे --

"अर्घासन बैठाय बहुत परिकरिमा दीनी ।
स्याम-सखा निज जानि बहुरि हित सेवा कीनी ।।
बूझत सुधि नंदलाल की विहँसत मुख ब्रज-बाल ।
नीके हैं बलवीर जू, बोलत बचन रसाल ।।"[३]

लेकिन नंददासजी की गोपियाँ संयमी भी हैं। वे आते ही तुरंत कृष्ण के समाचार नहीं पूछतीं। पहले वे उद्धव का उचित स्वागत-सत्कार करती हैं और बाद में कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछती हैं। कृष्ण के साथ वे बलराम के बारेमें भी पूछती

है । ` उद्धव के मुख से कृष्ण का नाम सुनते ही उनका विरह उद्दीप्त हो उठता है । यहाँ तक कि वे मूर्च्छित हो जाती हैं । प्रेम की यह पराकाष्ठा है । किन्तु सूर की गोपियों की भाँति नंददास की गोपियाँ हरसमय विरह में हाय-हाय करती हुई नहीं दिखाई देतीं । वे भावुक तो हैं, किन्तु उनमें संयम भी है । ` [४]

३) नारी सुलभ भावप्रवणता --

नंददासजी की गोपियों में नारीसुलभ भावप्रवणता भी है । वे कृष्ण का नाम सुनकर अपने घर की याद तक भूल जाती हैं । उनका हृदय प्रेमानंद से भर गया । वे खिल उठीं । उनके हृदय रुपी वृक्ष में प्रेम की लता खिल उठीं । गोपियों का हृदय आनंद से पूर्ण होकर प्रेम-भावना से व्याप्त हो गया । जिसप्रकार लता वृक्ष का आश्रय मिलने पर खिल उठती है, उसी प्रकार गोपियाँ कृष्ण का नाम सुनते ही अत्यंत खुश हो गयीं । कृष्ण - प्रेम की अधिकता के कारण उनका शरीर पुलकित हो गया । आँखों से अश्रु बहने लगे । उनका कंठ रुँध गया और आवाज में कंप निर्माण हो गया । इसीकारण वे अधिक कुछ कह न सकीं ---

" सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली ।।
पुलक रोम सब अँग भए, भरि आए जल नैंन ।।
कंठ घुटे गद्गद गिरा बोल्यो जात न बैंन ।।
बिबस्था प्रेम की ।। " [५]

कृष्ण का रुप-स्मरण कर ये गोपियाँ मूर्च्छित हो जाती हैं । कृष्ण की लीलाओं का गान करते-करते फूट-फूटकर रोने लगती हैं । उनका विरहिणी का रुप बडा मार्मिक है । उनकी प्रेमधारा अबाध गति से बहती रहती है । वे कृष्णरुप के सिवा और कुछ नहीं चाहतीं --

" हमरें तो यह रुप बिन और न कछू सुहाय ।
जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय ।। " [६]

४) गोपियों की तार्किकता --

नंददास के ` भँवरगीत ` की गोपियों की यह सबसे महत्वपूर्ण विशेषता

है। `भँवरगीत` की गोपियाँ विदुषी तथा पंडिता हैं। उद्धव ज्ञान तथा निर्गुण ब्रह्म का संदेश देने आये थे। गोपियाँ एक के बाद एक सुन्दर तर्क प्रस्तुत करती हुई उद्धव को पराजित कर देती हैं। कर्म, उपासना, ध्यान, धारणा इत्यादि का उद्धव द्वारा प्रतिपादन सुनकर गोपियाँ बड़ी चतुराई से इनका खण्डन करती हैं। वे सूरदास की गोपियों सी इतनी भावुक नहीं हैं। `सूर की गोपियों में जहाँ भावुकता का प्राबल्य है, वहाँ उनमें तर्कशीलता, प्रत्युत्पन्नमतित्व उतना नहीं जितना नंददास की गोपियों में है।`[7] उस काल की आवश्यकता के अनुसार निर्गुण-निराकार पर सगुण-साकार की प्रतिष्ठा स्थापित करना आवश्यक बन गया था। उद्धव - गोपी संवादों द्वारा कवि इस कार्य में सफल बन गये हैं। भँवरगीत की गोपियाँ सरलता से उद्धव के तर्कों का खण्डन करती हैं और अपने मतों का मण्डन करती हैं।

अ) सगुण ब्रह्म संबंधी गोपियों के तर्क --

गोपियाँ रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के सगुण रूप की उपासना करनेवाली हैं। ये गोपियाँ भक्ति के सामने मुक्ति को भी तुच्छ मानती हैं। उद्धव गोपियों के पास आते हैं और निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने लगते हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण भगवान तुमसे दूर नहीं हैं। ज्ञान की आँखों से देखने पर वे निकट ही दिखाई देंगे। जिधर भी देखा जाए उधर कृष्ण भगवान ही समाये हुए हैं। पृथ्वी के कण-कण में उनका ही रूप दिखाई देता है। लोह, लकड़ी, पत्थर, जल, स्थल, पृथ्वी और आकाश आदि सभी में उनका ही प्रकाश दिखाई देता है। कृष्ण की ज्योति सभी ओर फैली हुई है। कृष्ण का वास्तविक रूप निर्गुण रूप में ही स्वीकारना चाहिए। सत्, रज, तम इन तीनों गुणों का उन पर प्रभाव नहीं पडता। इस परब्रह्म के हाथ, पैर, नाक, कान, आँखें आदि कुछ भी नहीं, इसकारण वे साकार नहीं।

उद्धव की इन बातों पर गोपियाँ विश्वास नहीं करतीं। इस पर वे अपना सुन्दर तर्क प्रस्तुत करती हुई कहती हैं ---

"जो मुख नाहिंन हुतो कहौ किन माखन खायो ?
पायन बिन गो संग कहौ को बन बन धायौ ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोबरधन लियौ हाथ ।
नंद-जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ।।"

अगर कृष्ण के मुख नहीं था तो उन्होंने मक्खन कैसे खाया ? अगर उनके पैर नहीं थे, तो वे गौओं के साथ वन-वन कैसे जाते थे ? अगर उनके आँखे नहीं थीं,तो उन्होंने आँखों में अंजन कैसे दिया ? उनके हाथ नहीं थे, तो उन्होंने गोवर्धन पर्वत को अपने हाथ पर कैसे उठाया ? हम तो नंद और यशोदा को कृष्ण के माता-पिता समझती हैं। गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का रसास्वादन कर चुकी हैं। उनके रूप को उन्होंने देखा है । इसीकारण ये गोपियाँ निर्गुण-निराकार को समझाने में असमर्थ हैं।

उद्धव भी गोपियों के इन तर्कों से चुप बैठनेवाले नहीं थे । अपनी निर्गुण ब्रह्म की बात वे फिर से कहने लगते हैं। गोपियाँ अपने सरल प्रेममार्ग के सामने योग को कठिन मानती हैं। वे उद्धव से कृष्ण का गुणगान सुनाने के लिए कहती हैं। उनकी आँखों के आगे कृष्ण की ही मूर्ति नाचती है । वाणी से भी उन्हीं का ही नाम वे लेती हैं। गोपियों के मन और प्राणों का आधार कृष्ण ही है । ऐसी अवस्था में कृष्ण रूपी अमृत को छोडकर निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करना उन्हें धूल समेटने जैसा लगता है । सगुण ब्रह्म को छोडकर निर्गुण के लिए दौडना उन्हें घर आये नाग की पूजा न करते हुए बाँबी पूजने के लिए बाहर जाने के समान लगता है । गोपियों का कहना है कि रसरूप कृष्ण को छोडकर दु:स्साध्य,कष्टमय निर्गुण की ओर दौडना नासमझी ही है ।

उद्धव सीधी तरह गोपियों की बात माननेवाले नहीं थे । वे निर्गुण ब्रह्म के बारेमें बार-बार कहने लगते हैं। उद्धव कहते हैं कि अगर यह ब्रह्म सगुण होता तो वेद और उपनिषादों में इसका वर्णन `नेति-नेति` ऐसा नहीं किया जाता । यदि ब्रह्म के गुण होते तो वेदों में लिखा गया होता कि `ब्रह्म` ऐसा है,ऐसा है । परंतु इन ग्रंथों में तो ब्रह्म को निर्गुण ही स्वीकार किया गया

है । सगुणता का उस पर आरोप किया गया है । माया के कारण यह सगुणता दिखाई देती है ।

गोपियाँ उद्धव के इस तर्क से सहमत नहीं हो सकीं । इसपर गोपियाँ अपना तर्क देती हैं । वे कहती हैं कि अगर ब्रह्म निर्गुण है, तो संसार में सत्, रज, तम इन तीन गुणों की निर्मिति कैसे हुई ? ये गुण कहाँ से आये ? यह संसार जो हमें दिखाई देता है, वह कहाँ से आया ? जिसप्रकार वृक्ष के लिए बीज की आवश्यकता होती है, उसीप्रकार गुणात्मक सृष्टि के निर्माण के लिए उस सृष्टि के निर्माता को भी गुणों से युक्त होना आवश्यक होता है । माया एक दर्पण है । परब्रह्म के गुणों का प्रतिबिंब माया के दर्पण में पड रहा है । मेघ से जब पानी बरसता है,तब वह निर्मल तथा स्वच्छ होता है, किन्तु मिट्टी के साथ मिलकर वह गंदा हो जाता है । उसीप्रकार ब्रह्म के गुण जब माया के माध्यम से सृष्टि में प्रतिबिंबित होते हैं, तब वे अपनी निर्मलता खो देते हैं --

" जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें ।
बीज बिना तरु जमें मोहिं तुम कहौ कहाँ तें ।।
वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच ।
गुन ते गुन न्यारे नहीं अमल बारि मिली कीच ।। "

नंददासजी की गोपियों पर वल्लभ-संप्रदाय का गहरा प्रभाव है । वे माया को मिथ्या नहीं मानतीं । विद्यामाया से ही ब्रह्म जगत् का निर्माण करता है, ऐसा उनका कहना है ।

निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देनेवाले उद्धव को गोपियों की ये बातें अच्छी नहीं लगती । वे कहते हैं कि माया के गुण और ब्रह्म के गुण अलग-अलग हैं । भ्रम के कारण तुम माया और ब्रह्म के गुणों को एक में मिला रही हो । परब्रह्म के गुण और रूप का रहस्य कोई नहीं जानता । इसलिये वेद भी उनके गुण और रूप का रहस्य समझाने में असमर्थ हैं । उद्धव की इस बात पर गोपियाँ अपना सुन्दर तर्क देती हैं --

"बेदहु हरि के रूप स्वास मुख तें जो निसरे ।
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पछिलो सुधि बिसरे ।।
कर्म मध्य ढूँढ़ै सब किनहिं न पायो देखि ।
कर्म-रहित ही पाइये तातें प्रेम बिसेखि ।।" [10]

वेद हरि के ही रूप हैं। ये परब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं। ऐसा कहा जाता है कि वेदों की निर्मिति ब्रह्म के श्वास के रूप में हुई है । इसकारण वेद परब्रह्म के ही अंश हैं। वेदों को कर्म क्रिया में आसक्ति होने के कारण वे अपने वास्तविक रूप को भूल जाते हैं। सभी लोगों ने ब्रह्म को कर्मकांड में ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है । इसलिये वे किसी की समझ में नहीं आते । कर्म के बीच ढूँढ़ने से परब्रह्म नहीं मिलता । उसकी प्राप्ति कर्मरहित होकर ही संभव है । इसलिए प्रेम को महत्वपूर्ण कहा गया है । परब्रह्म को प्राप्त करने का सबसे श्रेष्ठ साधन भक्ति है । परब्रह्म के स्वरूप को समझाने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है । जिनके पास दिव्य दृष्टि है, वही ब्रह्म को देख सकते हैं । जिनके हृदय में प्रेम और श्रद्धा नहीं है, वे परब्रह्म के रूप को समझाने में असमर्थ हैं। सगुण ब्रह्म को छोडकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना सूर्य की धूप पकडने जैसा लगता है । गोपियों को कृष्ण को छोड अन्य रूप अच्छा नहीं लगता ।

इसप्रकार गोपियों के अनुसार निर्गुण ब्रह्म से भी सगुण ब्रह्म ही श्रेष्ठ है । 'यहाँ ब्रह्म के निर्गुण - निराकार स्वरूप का खण्डन कर सगुण साकार रूप की प्रतिष्ठा की गई है । साथ ही ज्ञान, योग आदि के स्थान पर भक्ति को ही ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र सर्व सुलभ साधन माना गया है ।' [11]

ब) कर्मवाद संबंधी गोपियों के तर्क --

नंददासजी ने गोपियों के माध्यम से कर्मवाद का भी खण्डन किया है । वे ज्ञान, योग और कर्म के सामने प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। उद्धव निर्गुण ब्रह्म का संदेश सुनाने आये थे । योग का यह उपदेश उन्हें धूल के समान लगता है । वे कहती हैं --

"ताहि बताओ जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ ।
प्रेम सहित हम पास नंदनंदन गुन गावौ ।।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि ।
प्रेम पियूषै छाँडिके कौन समेटे धूरि ।।" [12]

गोपियों के मन, वचन, आँखों तथा वाणी में कृष्ण का ही नाम रहता है । ऐसे प्रेममयी भगवान को छोडकर योग मार्ग की धूल स्वीकारने के लिए गोपियाँ तैयार नहीं हैं ।

उद्धव को गोपियों का 'धूरि' यह शब्द अच्छा नहीं लगता । वे जल्द ही धूल का महत्व प्रतिपादन करने लगते हैं । धूलक्षेत्र में आकर ही अच्छे कार्य करते हुए आदमी भगवान की प्राप्ति करता है । सारी सृष्टि धूल के कारण ही निर्मित हुई है । इतना ही नहीं तो चौदह लोक, सात द्वीप और नौ खण्ड भी इसी धूल के कारण ही बने हुए हैं । इस प्रकार धूल की अपनी महिमा है । धूल अच्छी होने के कारण ही भगवान शंकर ने उसे माथे पर लगाया है ।

इसपर गोपियाँ उद्धव के मत का खण्डन करती हैं । अपना तर्क देते हुए वे कहती हैं --

"कर्म-धूरि की बात कर्म-अधिकारी जानैं ।
कर्म-धूरि कों आनि प्रेम-अमृत में सानैं ।।
तबही लौं सब कर्म हैं जब लौं हरि उर नाहिं ।
कर्म बंध सब बिस्व के जीव विमुख ह्वै जाहिं ।।" [13]

कर्मधूरि की बात कर्मवादी लोग ही जानते हैं । कौनसा कर्म करने से क्या फल मिलता है यह बात कर्मवादी लोगों की समझ में ही आ जाती है । कर्म धूल के समान है और प्रेम अमृत के समान होता है । दोनों की तुलना करना गोपियों को अच्छा नहीं लगता । उनका कहना है कि कर्म बंधन में फँसे हुए लोग भगवान से मुँह फेर लेते हैं । कर्म के साथ ही पाप-पुण्य दोनों भी रहते हैं । पाप कर्म लोहे के समान है, तो पुण्य कर्म सोने के समान, परंतु इन दोनों में आखिर बंधन है ही । बेडी लोहे की हो या सोने की बेडी ही होती है । अच्छे कर्म करने पर स्वर्ग की

प्राप्ति होती है और बुरे कर्म से नरक की । कर्म की अवधि समाप्त होने के बाद जीव को संसार में आना पडता है । निर्गुण ब्रह्म की पूजा करनेवाले योगी ज्योति का ध्यान करते हैं। भक्त अपने इष्ट के स्वरूप को ही जानता है । उसका चिंतन करता है । वह श्रीकृष्ण का अपने हृदय में ध्यान करता है । निर्गुण का स्वरूप निश्चित न होने के कारण सहजता से ध्यान में नहीं आ जाता । अगम, अगोचर ऐसे भगवान को प्राप्त करना कष्टसाध्य है --

" जोगी जोतिहिं भजैं भक्त निज रूपहि जानैं ।
प्रेम-पियूषै प्रगटि स्यामसुन्दर उर आनैं ।।
निर्गुण गुण जो पाइयैं लोग कहैं यह नाहिं ।
घर आये नाग न पुजैं बाँबी पूजन जाहिं ।" [१४]

इसपर उद्धव कहते हैं कि भक्ति भी एक प्रकार का कर्म है और कर्मयोग से ही धीरे-धीरे कर्म का नाश हो जाता है । गोपियाँ इस पर बडी चतुरता से कहती हैं कि अगर कर्मों का अंत में त्याग करना है तो कर्मबंधन में पडा ही क्यों जाए ? वास्तविक वस्तु तो सगुण ही है, जो सारे जगत् में दृश्यमान है ।

इसप्रकार नंददास की गोपियाँ अत्यंत बुद्धिमान हैं। बातों-बातों में वे सहज ज्ञान-मार्ग का खण्डन करके भक्ति मार्ग की महत्ता स्थापित कर देती है । गोपियों के इन तर्कों से उद्धव जैसा ज्ञानी भी भक्त बन जाता है । वे बहुत ही चतुर हैं । कर्मवाद का भी वे आसानी से खंण्डन करती हैं। नंददासजी के ' भँवरगीत ' का उद्देश्य सगुण भक्ति की निर्गुण पर विजय दिखलाना है और गोपियों के सुन्दर तर्कों को प्रस्तुत करके वे अपने उद्देश्य में पूर्णत: सफल बन गये है । गोपियाँ कृष्ण के प्यार में पागल होकर प्रेम-भावना को ही जीवन का मूल मानती हैं। दर्शन जैसा जटिल प्रसंग भी गोपियों के संवादों से सरल बन गया है । इसमें गोपियों की बुद्धि की चमक दिखाई देती है ।' इस वाद-विवाद में गोपियाँ भी दर्शन के उच्च स्तर पर पहुँच कर ही उत्तर-प्रत्युत्तर देती है । सूर की गोपियाँ कभी भी इस प्रकार के दार्शनिक विवादों में सक्रिय भाग नहीं लेती हैं। नंददास ने अपनी गोपियों को केवल मात्र ग्रामीण भक्त-रूप नहीं दिया है । वे दर्शन के जटिल सिद्धांन्तों को समझानेवाली पूर्ण पंडिता हैं।"[१५]

नंददासजी की गोपियों पर वल्लभ-संप्रदाय का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । ब्रह्म, जीव,जगत्, माया आदि के संबंध में गोपियों के विचार वल्लभ-संप्रदाय के अनुसार ही हैं । नंददास की गोपियों में वाद-विवाद का स्वर स्पष्ट दिखाई देता है । नंददास का 'भँवरगीत आकार से छोटा होते हुए भी उन्होंने गोपियों के माध्यम से अपने दार्शनिक विचारों को सुंदर अभिव्यक्ति दी है ।

५) पुष्टिमार्गीय गोपियाँ --

नंददासजी ने अपनी गोपियों के माध्यम से पुष्टि भक्ति का समर्थन किया है । इस पुष्टि भक्ति के लिए आश्रय गोपियाँ हैं और आलंबन उनके प्राण-प्रिय श्रीकृष्ण हैं । पुष्टिमार्ग के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं । गोपियों की भक्ति शास्त्र तथा ज्ञान पर आधारित नहीं, वह प्रेम पर आधारित है । गोपियाँ इस प्रेमभक्ति की साकार मूर्ति हैं । 'भँवरगीत' के अनेक छन्दों में गोपियों का कृष्ण के प्रति निर्हेतुक प्रेम और अनन्य शरणागति का भाव प्रकट हुआ है । उनके तर्क, विरह,उपालंभ, रुदन,गुणकथन अंतर्दाह आदि उनके प्रेम के प्रतीक हैं, अतः यह कहा जा सकता है कि भँवरगीत का प्रेमतत्व विप्रलंभ-पुष्ट परमपुनीत भगवद्रति है और उनके उत्तरांश में इसी भगवद्रति का विशद विवेचन किया है ।'[१६]

गोपियों को कृष्ण के प्रेम का पात्र कहा गया है । पुष्टिमार्ग रागप्रधान है, इसमें प्रेमलक्षणा भक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की गयी है । कृष्ण के प्रति गोपियों की तन्मयतापूर्ण प्रेमासक्ति को आदर्श माना गया है । नंददासजी ने गोपियों के संवादों द्वारा उद्धव का भाव-परिवर्तन करके प्रेमभक्ति की प्रतिष्ठा की है ।

पुष्टिमार्गीय प्रेमासक्ति में लोक-वेद-कुल की मर्यादा के लिए कोई स्थान नहीं रहता । आत्मसमर्पणकारी प्रेम को ज्ञान, ध्यान,कर्म,धर्म आदि से श्रेष्ठ माना जाता है । नंदासजी की गोपियों ने भी यही किया है --

"हौं कह निज मरजाद की ग्यान रु कर्म निरूपि ।
ये सब प्रेमासक्त होइ रहीं लाज कुल लोपि ।।
धन्य ये गोपिका ।।"[१७]

गोपियों का प्रेम देखकर उद्धव उनकी प्रशंसा करते हैं। ये गोपियाँ कुल की मर्यादाओं को ठुकराकर कृष्ण का ध्यान करती हैं। इसकारण वे आनंद - स्वरूप कृष्ण और प्रेम की उच्चतम अवस्था को अवश्य प्राप्त करती हैं। यह देखकर उद्धव जैसे ज्ञानी भी यही कहने लगे कि ज्ञान और योग के सामने प्रेम ही सत्य है। वे अभी तक अपनी बुद्धि की विषमता के कारण ज्ञान-योग की उपमा प्रेम से दे रहे थे। प्रेम के सामने ज्ञान तो बिलकुल तुच्छ है --

"जे ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावैं।
काहे न परमानंद प्रेम पदवी को पावैं ।।
ग्यान जोग सब कर्म तें परे प्रेम ही साँच ।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे काँच ।।
विषमता बुद्धि की ।।"[18]

कृष्ण ने उद्धव से गोपियों को एकांत में संदेश देने के लिए कहा था। उससमय कृष्ण की यह बात उद्धव की समझ में नहीं आयी थी। लेकिन यहाँ आकर उद्धव इसका रहस्य समझ सके। उद्धव ने ज्ञान और योग का निरूपण किया था; लेकिन कुल की मर्यादा और लज्जा को छोडकर प्रेम में लीन इन गोपियों के आगे यह संदेश व्यर्थ है, यह बात उनकी समझ में आयी।

उद्धव गोपियों की अनन्य प्रेमभावना से अत्यंत प्रभावित हो जाते हैं। वे जीवन का मूल इसी प्रेम-भक्ति को मानकर उसे पाने की इच्छा करने लगते हैं। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्यार देखकर उनके ज्ञान का घमंड चूर-चूर हो जाता है। वे गोकुलवासियों को धन्य मानते हैं। इतना ही नहीं तो वे कृष्ण की लीला भूमि ब्रज के मार्ग की धूलि बनकर रहना चाहते हैं। वृंदावन के पेड, लता, कुंज आदि बन जाने की इच्छा व्यक्त करते हैं। इससे गोपियाँ जब इधर-उधर जायेंगी, तब उनकी छाया उस पर पडेगी और वे धन्य हो जायेंगी --

"कै ह्वै रहो द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परैं मोपै परछाहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं जौ कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यहि बर माँगो जाय ।।
कृपा करि देहो जो ।।"[19]

बाद में उद्धव मथुरा जाकर कृष्ण से गोपियों की प्रेमदशा के बारे में कहते हैं। वे कृष्ण से गोकुल जाकर रहने की बिनती करते हैं। गोपियों की संगति के कारण उद्धव में महान परिवर्तन हो गया था । प्रेम की अनुभूति से उनका कंठ गद्गद हो गया । भावावेश में श्रीकृष्ण के गुण भूलकर वे गोपियों का गुणगान करने लगे । वे कहते हैं --

"पुनि पुनि कहैं हे स्याम जाय वृंदावन रहियैं ।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी सँग लहिये ।"[20]

गोपियों की प्रेम-व्यथा सुनकर कृष्ण भी व्याकुल बन जाते हैं। कृष्ण के साँवले शरीर के रोम-रोम में गोपियाँ दिखाई देने लगीं कृष्ण उद्धव से कहने लगे कि उन गोपिकाओं में और मुझमें कणभर भी अंतर नहीं है । कृष्ण ने अपने शरीर में ही एक-एक गोपी को प्रकट करके उद्धव को दिखा दिया --

"गोपी आप दिखाइ एक करि कैं बनवारी ।
ऊधौ के भरे नैंन डारि व्यामोहक जारी ।।"[21]

नंददासजी ने भागवत का आधार लेकर बड़ी सुंदरता से प्रेम-भक्ति का निरूपण किया है । इसमें अध्यात्म पक्ष का निरूपण शृंगार रस के द्वारा किया है । नंददासजी की गोपियाँ पुष्टिमार्गीय हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति में प्रेम-भक्ति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसमें गोपियों को भक्त का आदर्श माना गया है । वे प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठता की प्रतीक हैं, इसलिए उन्हें भगवान का प्रेम प्राप्त था ।

६) नंददास की गोपियों का विरह --

साहित्य की दृष्टि से प्रेम के मुख्यत: दो भेद किये जाते हैं -
१) संयोग पक्ष और २) वियोग पक्ष । संयोग पक्ष के अंतर्गत प्रेमी और प्रिय का मिलन, हास, सौन्दर्यवर्णन और विविध प्रकार की क्रीडाओं और लीलाओं का वर्णन होता है । वियोग में वेदना, तडप, व्याकुलता का पीडात्मक अनुभव होता है । नंददास की गोपियों में मुख्यत: वियोग पक्ष का सुन्दर चित्रण किया गया है ।

कृष्ण से बचपन से प्यार करनेवाली गोपियाँ कृष्ण के मथुरा चले जाने पर विरह में पागल हो जाती हैं । बचपन का सहज सुलभ प्रेम गोपियों को कृष्ण-विरह में, काम की आग में जलाने लगता है । वियोग की लौकिक अनुभूति कष्टमय है । गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग में अत्यंत दु:खी हुई । लौकिक अनुभूति कभी सुखात्मक होती है, तो कभी दु:खात्मक होती है; परंतु यही अनुभूति जब काव्य में अभिव्यक्त होती है और रसपूर्णता पाती है, तब उन्हीं अनुभवों का लौकिक रूप समाप्त होता है । आनंद देने की क्षमता उनमें आती है । गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग में अत्यंत दु:खी हुई; परंतु वियोग शृंगार में वे दु:ख के बदले रसानंद की अनुभूति देती हैं और अलौकिक बन जाती हैं । यही कारण है कि साहित्य में वियोग शृंगार का महत्व सर्वाधिक है ।

'भँवरगीत' शृंगार रस के अंतर्गत विरह शृंगार का सुंदर काव्य है । विरह शृंगार के अंतर्गत उपालंभ तथा व्यंग्य का चित्रण किया जाता है । प्रिय से अलग हो जाने की स्थिति को वियोग कहा जाता है । यह वियोग शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार का होता है । 'जहाँ पर रति स्थायी भाव स्वप्न, चित्र, प्रत्यक्ष, श्रवण आदि से प्रकट होता है; परंतु प्रिय से संयोग न होने से और भी तीव्र होता रहता है अथवा मिलन के बाद फिर बिछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि के समय विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ पर वियोग शृंगार होता है ।' [२२]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ मिश्रजी ने विप्रलंभ शृंगार के चार भेद किये हैं --

` पूर्वरागमानप्रवास करुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् `

हिन्दी के विद्वानों ने वियोग शृंगार के विवेचन के लिए मिश्रजी का ही अनुकरण किया है। उन्होंने भी वियोग शृंगार के निम्नलिखित चार भेद किये हैं--

(१) पूर्वराग --

` समागम के पूर्व श्रवण एवं दर्शन से जब नायक-नायिका परस्पर संल-राग (प्रेमोन्मुख ) होकर दशा विशेष को प्राप्त होते हैं तब उस (दशा ) को पूर्वराग कहते हैं। ` [२३]

(२) मान --

` आशा के प्रतिकूल अपराधजनित प्रणकोप को मान कहते हैं। ` [२४]
मान दो प्रकार का होता है -- १) प्रणयमान और २)ईर्ष्यामान।

पूर्ण प्रेम होने पर भी जब नायक-नायिका एक दूसरे पर झूठा क्रोध कर मान करते हैं, तब उसे प्रणयमान कहा जाता है। प्रणयमान प्रेम को पुष्ट करनेवाला होता है।

ईर्ष्यामान का संबंध केवल नायिका से होता है। नायक का अन्य स्त्री से अनुरक्त होने पर जो मान किया जाता है,उसे ईर्ष्यामान कहा जाता है।

(३) प्रवास --

कार्य,शाप अथवा संभ्रम के कारण नायक के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते हैं। ` कार्यवश,शापवश अथवा संभ्रम (भय ) - वश भिन्न देशित्व ( अन्य देशमान ) को प्रवास कहते हैं। ` [२५]

(४) करुण --

नायक-नायिका में से एक की मृत्यु हो जाने पर उनमें से किसी एक की जो दशा होती है, उसे करुण वियोग कहा जाता है ।

विरह शृंगार के इस विवेचन के बाद समझ में आता है कि नंददासजी की गोपियों का विरह प्रवास विरह के अंतर्गत आ जाता है । कृष्ण का प्रवास कार्य के कारण हुआ है । दुष्ट कंस का वध करने के लिए कृष्ण मथुरा चले गये थे, परंतु मथुरा का राजकाज देखने के लिए वे वहाँ ही ठहरे । वे ब्रज वापस न लौट सके ।

कृष्ण और कुब्जा प्रेम की कथा सुनकर गोपियाँ मान करती हैं । मान के कारण वे कृष्ण तथा उद्धव को उपालंभ देती हैं । गोपियों का यह मान ईर्ष्याजन्य है । कृष्ण का कुब्जा के प्रति प्यार देखकर गोपियाँ ईर्ष्या करने लगती हैं । इस प्रकार मान की स्थिति के साथ ही वे प्रवासजन्य विरह का भी दु:ख उठाती हैं । गोपियों का विरह मान और प्रवास का मिश्रित रूप है ।

'भँवरगीत' का प्रसंग परंपरागत कृष्ण गोपी विरह को लेकर ही हुआ है । किसी भी रस की व्यंजना के लिए स्थायी भाव की आवश्यकता होती है । भावों की अभिव्यक्ति के लिए आलंबन का चित्रण तथा आश्रय की चेष्टाओं का वर्णन रहता है । मनुष्य के हृदय में स्थायी भाव सुप्तावस्था में रहते हैं । प्रसंग के अनुसार वे जागृत होकर रस-रूप में पसीजने लगते हैं । आश्रय याने जिसके मन में भाव निर्माण होते हैं, वह व्यक्ति और जिसके प्रति ये भाव निर्माण होते हैं, उसे आलंबन कहा जाता है । आश्रय की विविध चेष्टाओं को अनुभाव कहा जाता है । भावों के पीछे आने के कारण ही इन्हें अनुभाव कहा जाता है । अनुभाव दो प्रकार के होते हैं --

१) कायिक अनुभाव और

२) सात्विक अनुभाव ।

कायिक अनुभाव आश्रय की इच्छा पर निर्भर रहते हैं। सात्विक भाव स्वतंत्र होते हैं, इस पर आश्रय का कोई भी वश नहीं चलता । सात्विक भाव आठ प्रकार के होते हैं -- स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, वेपथु(कंप), वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ।

स्थायी भावों को उद्दिप्त करनेवाले साधन उद्दिपन विभाव कहे जाते हैं। रसव्यंजना के लिए उद्दिपन विभाव की भी आवश्यकता होती हैं ।

रसों के अवयवों में संचारी भाव भी महत्वपूर्ण रहते हैं। संचारी भाव तेंतीस हैं। शृंगार रस में सभी के सभी संचारी भाव रहते हैं ।

नंददासजी के 'भँवरगीत' में रति यह स्थायी भाव है । भँवरगीत की गोपियाँ आश्रय हैं। उनके परमप्रिय कृष्ण आलंबन हैं। शृंगार रस की व्यंजना के लिए कवि ने विस्तृत तथा गंभीर योजना की हैं । नंददास प्रतिभाशाली कवि होने के साथ-साथ रसिक भी थे । उन्हें सौन्दर्य और विरह का व्यक्तिगत अनुभव था । इसकारण इनके वर्णन स्वरसपूर्ण हैं। उद्धव के मुख से कृष्ण का नाम सुनकर गोपियों के हृदय का रति यह स्थायी भाव जागृत हो गया । विविध अनुभावों द्वारा कवि ने गोपियों की दशा का सुन्दर वर्णन किया हैं --

'सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनंद - रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली ।।
पुलक रोम सब अँग भए भरि आए जल नैंन ।
कण्ठ घुटे गद्गद गिरा बोल्यो जात न बैंन ।।
विवस्था प्रेम की ।।' [२६]

प्रेम की यह अवस्था पूर्णत: व्यक्त करने के लिए रोमांच, स्वरभंग तथा अश्रु का वर्णन किया गया हैं । प्रियतम का नाम सुनकर ही वे भाव-विभोर हो गईं। यह आनंद हृदय में न समाने के कारण अश्रु बनकर आँखों के द्वारा बह निकला । हर्ष आवेग के कारण उनके शरीर पर रोमांच उभर आये । प्रेम की अधिकता के कारण कण्ठ रुँध गया । परन्तु कृष्ण का संदेश सुनते ही आशाजनित यह उल्लास नष्ट हो गया । उन्हें कृष्ण का रूप-स्मरण हो आया । भावना के

प्रबल आवेग को सँभालने में वे असमर्थ हो गयीं और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं। --

> "सुनि मोहन-संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो ।
> पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो ।।
> विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रज-बनिता मुरझाय ।
> दै जल छींटं प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय ।।" २७

इसप्रकार स्मृति, असूया, दैन्य आदि संचारी भावों के द्वारा विरह-शृंगार की व्यंजना की गयी है। उद्धव जब निर्गुण ब्रह्म संबंधी तर्कपूर्ण विचार अभिव्यक्त करने लगते हैं, तब यह विवाद उन्हें शिथिल कर देता है। उद्धव के वाद-विवाद में भटकने पर गोपियों का मन फिर से कृष्ण की ओर आकर्षित होने लगता है। विरह की ग्यारह दशाओं के अंतर्गत वे विरह में भी संयोग का अनुभव करने लगीं। भावजगत् में मानसिक मिलन द्वारा कृष्ण को उपालंभ देने लगीं। ये उपालंभ उनकी वेदना को कम करने की अपेक्षा अधिक ही बढ़ाने लगे। अंत में गोपियाँ विवश होकर "हा करुनामय नाथ हो, कृष्न, मुरारि" कहकर रोने लगीं। नंददासजी ने रोती हुई गोपियों का भी सुन्दर वर्णन किया है --

> "उमग्यो ज्यौं तहँ सलिल सिंधु लै तन की धारन ।
> भींजत अंबुज नीर कंचुकी भूषण हारन ।।" २८

उद्दिपन रूप में कृष्ण के स्थान पर उद्धव का ब्रज में आगमन, उद्धव की ज्ञानमयी बातें तथा भ्रमर प्रवेश का प्रसंग है। ज्ञान, भक्ति का विवेचन बुद्धिप्रधान है। इसमें गोपियाँ तर्क का आश्रय लेती हैं, परंतु भ्रमर प्रवेश भावात्मक है। काले रंग के साम्य के आधार पर भ्रमर उद्दिपन बन जाता है। भ्रमर को देखकर उन्हें कुब्जा से प्यार करनेवाले कृष्ण की याद आ जाती है। यह याद गोपियों की पीडा को अधिक तीव्र कर देती है।

"भँवरगीत" में अनेक संचारी भावों का वर्णन भी किया गया है। अपना दैन्य भाव दिखाते हुए गोपियाँ कहती हैं ---

" हमकों पिय तुम एक ही, तुम कों हमसी कोरि ।
बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि ।।
एकही बार यौं ।।"[२९]

इसप्रकार इन दो पंक्तियों में गोपियाँ अपने अनेक भावों को प्रकट करती हैं । एक ओर गोपियाँ अपनी दीनता प्रकट करती हैं, तो दूसरी ओर उनका आग्रह भी स्वाभाविक बन गया है । कृष्ण को बहुत कुछ प्राप्त हो गया है । उन्हें गोपियों के समान करोडों नारियाँ मिल सकती हैं; किन्तु गोपियों के लिए तो एक मात्र कृष्ण भगवान ही हैं । उनकी अवस्था पानी के बिना तडपती हुई मछलियों के समान बन गई हैं । इसलिये यह दैन्य प्रदर्शन है । दूसरी ओर वे प्यार की डोर को एक झटके में न तोड डालने की प्रार्थना करती हैं ।

नंददासजी ने अपने 'भँवरगीत' में मानवेतर प्राणियों की विरह - व्यथा का भी चित्रण किया है । कृष्ण के विरह में गोपिकाओं के साथ - साथ कृष्ण - विरह में व्याकुल गाँओं का भी वर्णन किया गया है । इन गाँओं का वर्णन करते हुए अपने दुःख को दूर करने की प्रार्थना भी ये गोपियाँ करती हैं --

" अहो ! नाथ ! रमानाथ और जदुनाथ गुसांई !
नँदनँदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं ।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुख लेहु ।
दुख-जल-निधि हम बूडहीं कर - अवलंबन देहु ।।
निठुर ह्वै कहा रहे ? ।।"[३०]

वाणीहीन पशु भाषा के अभाव में अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकते । वे शारीरिक क्रियाओं द्वारा ही अपनी व्यथा को प्रकट करते हैं । इसकारण ये गौएँ कृष्ण के साथ जहाँ चरने जाती थीं, उन्हीं स्थानों पर फिरती हैं । वे कृष्ण को ढूँढने का असफल प्रयत्न करती हैं ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि नंददासजी के 'भँवरगीत' में विरह रस के सभी अंगों का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

गोपियों के उपालंभ --

विरह शृंगार में उपालंभों को अत्यंत महत्व रहता है । `उपालंभ एक मिश्र भाव है । ईर्ष्या, विरह एवं विवशता के कारण ही उपालंभ की उत्पत्ति होती है । नारी अपने प्रणय-व्यापार में अनुकूल प्रतिदान न पाकर ही नायक को उपालंभ देकर अपने हृदगत ईर्ष्या, क्रोध तथा विरह भाव को व्यक्त करती है । उपालंभ का मूल कारण उसकी विवशता एवं दयनीय स्थिति है । वह नायक पर प्रत्यक्ष क्रोध नहीं कर सकती; किन्तु नायक को अन्य नायिका पर आसक्त देखकर उसके अहम् को पीडा पहुँचती है । उपालंभ उसी पीडा का व्यक्त स्वरूप है ।` [३१]

सामंतीय युग में जब पुरुष में एकनिष्ठ प्रेम का अभाव हो गया था, तब उपालंभ और व्यंग्य प्रतिदिन की बात बन गयी थी । पुरुष जब एक नारी को छोडकर अन्य के पास जाता है, तब लौटने पर उसे पत्नी से उपालंभ एवं व्यंग्य सुनने पडते । जीवन का यह तथ्य ही उपालंभ के रूप में काव्य में अभिव्यक्त हुआ है । उपालंभ द्वारा वह अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष को उसकी निष्ठुरता ,अपनी विवशता और दीनता से परिचित कराती रही । उपालंभ का यह रूप प्रत्यक्ष और अन्योक्ति दोनों ही रूपों में व्यक्त होता है । जब नारी की अवस्था अधिक गंभीर होती है, तब वह पुरुष को अन्योक्ति रूप से ही उपालंभ देती है । परंतु इस संशय के हट जाने पर अथवा कम होने पर वह प्रत्यक्ष व्यंग्य का ही उपयोग करती है ।

`भँवरगीत` की गोपियों ने भी उपालंभ तथा व्यंग्य का प्रयोग करते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है । `भँवरगीत` में गोपियों के परम-प्रेम का चित्रण किया गया है । प्रेमी [illegible] जानेवाला पुरुष भले ही भ्रमर-वृत्ति का शिकार हो अपनी प्रेमिकाओं को त्याग दे, पर प्रेमिकायें जिसे एक बार प्यार करती हैं, उसे कभी भूल नहीं पातीं । उनके व्यंग्यबाणों, उपालंभों, क्रोध तथा आक्षेपों से उनका एकनिष्ठ प्रेम ही दिखाई देता है । गोपियों को छोडकर कृष्ण मथुरा जा बसे हैं, इसीकारण गोपियाँ

कृष्ण को व्यंग्य तथा उपालंभ देती है; परंतु उन्हें कभी भूलना नहीं चाहतीं। भ्रमर, उद्धव और कृष्ण को दिये गये उपालंभों में गोपियों की आंतरिक प्रेमदशा का चित्रण किया गया है। उपालंभ देते-देते गोपियों का फूट-फूटकर रो उठना भावों का चरमविकास ही है।

उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का संदेश देते हैं। गोपियाँ उद्धव के प्रत्येक मत का खण्डन भी करती हैं। फिर भी उद्धव गोपियों के सगुण ब्रह्म को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होते। वे गोपियों से कहते हैं कि तुम्हें जितने भी गुण या गुणमय पदार्थ दिखाई देते हैं, वे सब अनित्य और अनश्वर हैं। उद्धव एक ही बात की पुनरावृत्ति करने लगे तो गोपियाँ खीझ उठीं। उन्होंने कहा, 'हे उद्धव ! जो लोग नास्तिक हैं, उन्हें ईश्वर के सगुण रूप पर विश्वास नहीं आयेगा। उनका प्रयत्न सूर्य को छोडकर धूप को पकडने जैसा हास्यास्पद रहेगा। कृष्ण जैसे साक्षात् सूर्य को छोडकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना सूर्य की धूप पकडने के समान होगा। हमें तो कृष्ण के इस रूप के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता।' 'हमरे तो यह रूप बिन और न कुछ सुहाय' कहकर गोपियाँ कृष्ण से मुख मोड लेती हैं और कृष्ण के स्वरूप में ध्यान-मग्न हो जाती हैं। वे वियोग में भी संयोग का अनुभव करने लगती हैं। श्रीकृष्ण अपने पीतांबर धारण किये हुए वेश में गोपियों के सामने आ जाते हैं --

" ऐसे में नंदलाल रूप नैननि के आगे।
आय गयौ छवि छाय बने बीरी अरु बागे।।
ऊधो सौं मुख मोरिकै कहत तिनहिं सों बात।
प्रेम-अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुचात।।
तरक रसरीति की।।" [32]

श्रीकृष्ण का इसप्रकार मानसिक जगत् में साक्षात्कार कर वे उद्धव की ओर से मुख मोडकर बैठ गईं और कृष्ण से ही बातें करने लगीं। श्रीकृष्ण से बातें करते समय उनके मुख से प्रेम-अमृत से पूर्ण शब्द निकलने लगे और ईर्ष्या के कारण आँखों में पानी भर आया। यहाँ गोपियाँ उद्धव की ओर से मुँह मोडकर उद्धव का अपमान नहीं करना चाहतीं तो कृष्ण-मिलन के लिए वे एकांत चाहती हैं।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY. KOLHAPUR.

तर्कबुद्धि अथवा लोक से मुँह मोडकर केवल अपने इष्ट देवता का ध्यान करते हुए उनके सामने आत्मसमर्पण करना चाहती हैं।

भावजगत् के काल्पनिक मिलन में गोपियाँ इतनी मग्न हो गईं कि वे अत्यंत दीन होकर कातर स्वर में कृष्ण को उपालंभ देने लगीं। वे अपना विरह दुःख व्यक्त करते-करते कृष्ण-विरह से व्याकुल गौओं का भी विरह व्यक्त करने लगीं। वे व्याकुल होकर कहती हैं, "हे नाथ! लक्ष्मी के पति, यदुवंश के नाथ, गोस्वामी, नंदनंदन तुम्हारे बिना ये गौएँ बन-बन फिरती रहती हैं। तुम यहाँ आओ और इन गौओं का विरह दूर करो। हम लोग भी दुःखरूपी सागर में डूब रही हैं। हमें अपने हाथ का आधार दीजिए --"

"अहो! नाथ! रमानाथ और जदुनाथ गुसांई!
नँदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाई।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुख लेहु।
दुख जलनिधि हम बूडहीं कर अवलंबन देहु।।
निठुर ह्वै कहा रहे?" 33

यहाँ गोपियाँ अपनी दीनता, कातरता, अभिलाषा, आत्मनिवेदन तथा उपालंभ आदि अनेक भावनाओं को व्यक्त करती हैं।

एक गोपी अपनी विवशता, अधीनता, दीनता व्यक्त करते हुए कहती है, "हे प्रियतम! तुम एक बार दर्शन देते हो और आँखों से ओझल हो जाते हो। तुम्हें यह छलविद्या किसने सिखाई? हम इस समय तुम्हारे अधीन हैं, इसलिये दीन होकर बोल रही हैं। तुम्हारे बिना हमारी दशा जल बिन मछली के समान बन गई है। पानी के बिना जैसे मछली तडपती रहती है, उसीप्रकार हम भी तुम्हारे बिना व्याकुल होकर तडप रही हैं। तुमसे अलग होकर जीना हमारे लिए अत्यंत कठिन बन गया है।" --

" कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई ।
यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई ।।
हम परबस आधीन हैं ताते बोलत दीन ।
जल बिनु कहि कैसे जियें, पराधीन जे मीन ।।
बिचारो रावरे ।। "[34]

प्रेम का धागा बडा नाजुक होता है । एक बार अगर वह टूट गया तो टूट ही गया । इसीकारण इसे एकही झटके में तोड डालना अच्छा नहीं । गोपियाँ सिर्फ कृष्ण के दर्शन ही नहीं करना चाहतीं तो मुरली की मधुर धुन भी सुनना चाहती हैं --

" कोउ कहैं पिय दरस देहु तौ बेनु सुनावौ ।
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लौन लगावौ ।।
हमकौं तुम पिय एकही तुमको हमसी कोरि ।
बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि ।।
एकही बार यौं ।। "[35]

वह गोपी कहती है, " जंगल की आड में छिपकर हमारे घायल हृदय के जख्म पर नमक क्यों छिडकते हो ? यह ठीक है कि हमारी जैसी तुमको करोडों प्राप्त हो जायेंगी ; परंतु हम गोपिकाओं के लिए तुम ही हो । हम संख्या में अधिक हैं, यह जानकर तुम प्यार के डोर को एकाएक इसप्रकार तोड न डालो । प्यार की डोर को एकदम तोड डालना अच्छा नहीं है । "

गोपियों के ये उपालंभ दो रूपों में मिलते हैं --

१) मथुरावासी कृष्ण के प्रति ,

२) विष्णु के अन्य अवतारों से संबंधित कृष्ण के रूप में ।

कृष्ण के प्रति उपालंभ देते हुए गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण मथुरा जाकर घमंडी बन गये हैं । मथुरा की राज्य-प्राप्ति को लक्ष्यकर वे कृष्ण पर मधुर व्यंग्य करती हैं --

"कोऊ कहैं अहो स्याम कहा इतराय गए हो ।
मथुरा कौ अधिकार पाय महाराज भए हौ ।।
ऐसे कछु प्रभुता अहो जानत कोऊ नाहिं ।
अबला बुधि सुनि डरि गई बलो डरैं जग माहिं ।।
पराक्रम जानिकैं ।।" 36

"हे कृष्ण ! तुम मथुरा का राज्य प्राप्त कर महाराज होकर अभिमान कर रहे हो । यह अधिकार तो कोई बहुत बडा अधिकार नहीं हैं । तुम्हारी प्रभुता तो सभी लोग जानते थे। तुम्हारा पराक्रम देखकर संसार के बडे-बडे लोग भी डरते थे । हम तो अबला हैं, हम तो जरुर डरेंगी ।"

एक बार कृष्ण ने इंद्र के क्रोध से प्रलय के समय जलवृष्टि से बचाया था ।इसी बात को याद करते हुए एक गोपी ने कहा, "हे श्याम ! अगर तुम्हें इसीतरह हमें विरह की आग में जलाकर मारना था,तो हाथ पर गोवर्धन धारण करके हमारी क्यों रक्षा की थी ?" व्याल याने अघासुर नामक राक्षस से कृष्ण ने गोपियों की रक्षा की । वह पूतना और बकासुर का भाई था । कृष्ण और ग्वाल-बाल गौओं को लेकर बन गये थे । अघासुर ने इन सबको निगल जाने के लिए अजगर का रुप धारण किया । तब कृष्ण ने उसके मुँह में घुसकर अपना शरीर इतना बढाया कि उसकी मौत हो गई और ग्वाल-बालों की रक्षा हुई । इसीप्रकार दावाग्नि की आग से भी गोप-बालों की रक्षा कृष्ण ने की थी । कालिया नाग ने जब यमुना में जहर फैलाना शुरु किया,तब कृष्ण ने उसकी हत्या कर डाली ।" पहले आपने सभी संकटों से हमें बचाया,हमारी रक्षा की, अपनी मधुर मुस्कान के द्वारा हमारे चित्त को चुरा लिया और अब विरह की अग्नि में हमें जला रहे हो ?" --

"कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे ।
गोबरधन कर धारि करी रच्छा तुम कैसे ?
ब्याल,अनल,विष,ज्वाल तैं राखि लई सब ठौर ।
बिरह-अनल अब दाहिहौ हँसी हँसी नंदकिसोर ।।
चोरि चित लै गये ।।" 37

एक गोपी आगे कहती है, `कृष्ण बड़े निष्ठुर हैं। उन्हें पाप भी नहीं लगता क्योंकि ये ही पाप-पुण्य का निर्माण करनेवाले हैं। बचपन से वे ऐसे ही निष्ठुर हैं। बचपन में एक-दिन स्तन पान कराते समय इन्होंने पूतना का वध किया था। वास्तव में पूतना उन्हें दूध पिला रही थी, इसी कारण कृष्ण को उसे प्राण-दान देना चाहिए था; लेकिन कृष्ण ने तो उसके प्राण ही लिये` --

`कोउ कहैं ये निठुर इन्हें पातक नहिं ब्यापै
पाप पुन्य के करन हार ये ही हैं आपै ।।
इनके निरदै रूप में नाहिंन कोउ चित्र ।
पय प्यावत प्रानन हरे पुतना बाल चरित्र ।।` [38]

उपालंभ एवं व्यंग्य का संबंध व्यक्ति विशेष के छोटे-छोटे कार्यकलापों से लेकर उसके पूर्वजन्म तक होता है। गोपियाँ कृष्ण के व्यवहारों को कृष्ण तक ही सीमित नहीं मानतीं, तो वे उनके पूर्वजन्मों तक की खबर लेती हैं। विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख करती हुई वे सभी रूपों में उनके निष्ठुर स्वरूप का ही दर्शन करती हैं। कृष्ण के स्वार्थी स्वरूप के लिए उनके पास अनेक प्रमाण हैं।

गोपियों के प्रियतम कृष्ण के रूप में ही निर्दय नहीं हैं तो उसने साक्षात् धर्मस्वरूप भगवान राम के रूप में भी स्त्री जाति पर अत्याचार किये थे।

एक गोपी ताडका वध की याद करते हुए कृष्ण की निष्ठुरता के बारेमें कहने लगी। उसने कहा, `इनकी निष्ठुरता आज की नहीं है, तो यह पहले से ही चली आ रही है। जब इन्होंने रामचंद्र के रूप में अवतार लिया था, तब उन्होंने यही निष्ठुरता की थी। विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा के लिए जब ये जा रहे थे, तो इन्होंने, रघुवंश के दीपक ने मार्ग में ताडका को मार डाला। यह उनकी बचपन की करतूत है, तो बड़ा होने पर उनकी निष्ठुरता का बढ़ना साहजिक ही है` --

"कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई ।
रामचंद्र के रूप माहिं कीनी निठुराई ।।
जग्य करावन जात हे विश्वामित्र समीप ।
मग में नारी ताड़ुका रघुवंशी कुलदीप ।।
बालही रीति यह ।।" [39]

अपने वंश को उज्ज्वल करनेवाले इस प्रियतम ने स्त्री का - ताडका का वध करके कुल को कलंकित किया है । राम के रूप में उन्हें 'इस्त्रीजित' भी कहा जाता है । वास्तविक बात तो यह है कि ये प्रारंभ से ही स्त्री के आज्ञापालक तथा रसलोलुप रहे हैं। सच्चे प्रेम का इन्होंने सदैव तिरस्कार किया है । सच्ची प्रेमिकाओं के प्रति वे हमेशा अत्याचार करते आये हैं। ये बड़े धर्मात्मा और स्त्रियों को वश में रखनेवाले हैं। वह गोपी कहती है ,

"कोऊ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे ।
लछ लाघव संधान धरैं आयुध के सूरे ।।
सीताजू के कहे तें सूपनखा पें कोपि ।
छेदे अंग बिरूप करि लोगनि लज्जा लोपि ।।
कहा ताकी कथा ।।" [40]

— श्रीराम किसी पर निशाना मारने में भी अत्यंत चतुर हैं। सीताजी के कहने पर इन्होंने शूर्पणखा को कुरूप कर डाला । ऐसा करते समय इन्हें लोक-लज्जा का भी ध्यान नहीं रहा । वास्तव में लोक-मर्यादा की दृष्टि से पुरूष को नारी पर हाथ नहीं उठाना चाहिए था;परंतु राम ने इसकी परवाह न करते हुए शूर्पणखा के नाक-कान काट दिये ।

एक बार वे राजा बलि के पास भूमि माँगने के लिए गये थे । उससमय उन्होंने वामन का रूप धारण कर लिया था, परंतु वहाँ दान लेते समय वे विशाल पर्वत बन गये । उन्होंने बलि से तीन पग भूमि की याचना की । विराट रूप धारण कर उन्होंने दो पग में स्वर्ग और पृथ्वी को नाप लिया और तीसरे पग के लिए उसने अपनी पीठ दे दी । इस याचना में उन्होंने सत्य और धर्म दोनों को छोडा । वास्तव में वामन रूप में जाने के कारण उन्होंने उसी रूप में दान

को स्वीकारना चाहिए था; परंतु इस सत्य को छोडकर शरीर को भी नापकर अपने लोभीपन का परिचय दिया --

"कोउ कहैं री सुनौं और इनके गुन आली ।
बलिराजा पैं गए भूमि माँगन बनमाली ।।
माँगत वामन रूप धरि परबत भयौ अकाय ।
सत्त धर्म सब छाँडि कैं धर्यौ पीठि पैं पाय ।।
लोभ की नाव ये ।।" [41]

गोपियाँ बाद में उनकी निर्दयता के बारेमें भी उपालंभ देने लगती हैं । वे कहती हैं, "इन्होंने परशुराम के रूप में अपनी माता को मार डाला था । अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा से माता रेणुका का इन्होंने वध कर डाला था । अपने कन्धे पर फरसा रखते हुए इक्कीस बार पृथ्वी-प्रदक्षिणा की और पृथ्वी के सारे क्षत्रियों को मारकर उनके रक्त से अपने पितरों का तर्पण किया था । जो आदमी इतना क्रूर बनकर अपनी माता की हत्या कर सकता है, वह कृष्ण के रूप में हमें विरह में जलाकर मारने लगा है तो इसमें कोई विचित्र बात नहीं है ।" --

"कोऊ कहैं इन परसुराम ह्वै माता मारी ।
फरसा कंधा धारि भूमि छत्रिन संघारी ।।
सोनित कुंड भरायकैं पोषो अपने पित्र ।
तिनके निरदय रूप में नाहिन कोउ चित्र ।।
विमल कह मानियैं ।।" [42]

इसके बाद एक गोपी हिरण्यकशिपु वध का स्मरण करते हुए उपालंभ देने लगती हैं । वह कहती हैं -

"कोउ कहैं अहो कहा हिरनकस्यप तें बिगर्यौ ।
परम ढीठ प्रल्हाद पिता के सनमुख झगर्यौ ।।
सुत अपने कौं देत हो सिच्छा दंड बँधाय ।
इन वपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय ।।
बिना अपराध ही ।" [43]

"हिरण्यकशिपु ने इनका क्या बिगाडा था ? वह अपने घाडसी पुत्र प्रल्हाद को खंभे से बाँधकर शिक्षा दे रहा था क्योंकि प्रल्हाद उससे झगडा करता था । वह पिता के अधिकार से अपने पुत्र को शिक्षा दे रहा था । तब इसी कृष्णा ने नृसिंह का रूप धारण कर प्रल्हाद के पिता को नाखून से फाड डाला ।"

"शिशुपाल के साथ भी वे इसप्रकार निर्दयता से पेश आये । इसमें स्वार्थी वृति भरी हुई है । शिशुपाल भीष्मक राजा के देश में विवाह करने गया था । जब शिशुपाल मित्र और अपने रिश्तेदारों के साथ बारात लेकर रुक्मिणी के द्वार पर पहुँचा, तो इन्होंने छल से रुक्मिणी का हरण कर उसे अपनी पत्नी बना लिया । इन्होंने इस प्रकार भूखे के मुख का कौर छीन लिया । ऐसे निर्मम कृष्णा से बढकर कोई स्वार्थी नहीं होगा"

"कोउ कहै सखि कहा दोष सिसुपाल नरेसै ।
ब्याह करन को गयो नृपति भीषम के देसैं ।।
दल-बल जोरि बरात कौं ठाढो हो छबि बाढि ।
इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढि ।।"

आपुने स्वारथी ।।"44

उपालंभ के क्रम में उनके हृदय की अनेक वृत्तियाँ खुलने लगीं । कभी कृष्णा की निष्ठुरता, कभी उनकी अधिकार-प्राप्ति और सभी कपट-व्यवहार को लक्ष्यकर जो कुछ भी गोपियों ने कहा, वह प्रेम-जगत् का एक रहस्य ही है । इससे प्रेम शिथिल नहीं पडता, तो वह अधिक बढता है । प्रिय की अनेक लीलाएँ गोपियों की आँखों के आगे आ गयीं । रोम-रोम में कृष्णा व्याप्त हो गये । गोपियों के प्रेमावेश में प्रिय का चरित्र प्रत्यक्ष हो उठा --

"इहि बिधि अवसेस परम प्रेमहिं अनुरागीं ।
और रूप पिय चरित तहाँ सब देखण लागीं ।।
रोम-रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय ।
तिनके भूत-भविष्य को जानत कौन दुराय ।।

रँगीली प्रेम की ।।"45

इसप्रकार ये गोपियाँ भूत तथा भविष्य को जाननेवाली हैं। वे सर्वज्ञ होने के साथ-साथ रंगीली भी हैं। वे कृष्ण के सभी अवतारों से परिचित हैं।

गोपियों को इसप्रकार भावविह्वल देखकर उद्धव के ज्ञान और योग का नियम सब बह गया। उद्धव भी उस प्रेमरस में डूबने लगे। वे प्रेमरंगीली गोपियों का गुणगान करने लगे। वे सोचने लगे कि ये गोपियाँ वंदनीय हैं, धन्य हैं। उद्धव कहने लगे, " मैं तो इनकी चरणधूलि के स्पर्श से धन्य हो जाऊँगा। अब गोपियों को प्रसन्न कराने की दृष्टि से मुझे प्रयत्न करना चाहिए।"

इसप्रकार जो उद्धव निर्गुण ब्रह्म तथा ज्ञान का संदेश लेकर आये थे, वे गोपियों की प्रेमदशा देखकर भक्त बन गये।

गोपियों के व्यंग्य --

उपालंभ एवं व्यंग्य का घनिष्ठ संबंध है। काव्य में प्राय: व्यंग्य और उपालंभपूर्ण उक्तियों का एक साथ ही प्रयोग किया गया है। व्यंग्य भी मानसिक अव्यवस्थित स्थिति का परिचायक है। असंतोष, क्रोध और ईर्ष्या का मिश्र भाव व्यंग्य में भी झलकता है। उपालंभ एवं व्यंग्य में इतना साम्य होते हुए भी इन दोनों में थोडा भेद है। उपालंभ में नायिका की विवशता अधिक है। इसमें अपने ही ऊपर दोषों का आरोप करने की भावना रहती है। परंतु व्यंग्य में क्रोध तथा प्रतिहिंसा का रूप अधिक दिखाई देता है। व्यंग्योक्ति में तीखापन, हृदय को ठेस पहुँचाने की प्रवृत्ति अधिक रहती है; परंतु उपालंभ में दैन्य भावना ही प्रधान है।

कृष्ण के मनमोहक रूप पर मुग्ध होने के कारण जब वे अपने मान और विवशता को व्यक्त करती हैं, तब वे उपालंभ का ही आश्रय लेती हैं। कुब्जा पर अनुरक्त कृष्ण के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते समय वे व्यंग्य का प्रयोग करती हैं। " अपनी विचारधारा से मेल न खानेवाले विचार को प्राय: व्यंग्य द्वारा खंडित करके उडा दिया जाता है। प्रतिपक्षी को मूर्ख समझाने की प्रवृत्ति व्यंग्य के पीछे रहती है। भ्रमर काव्य का व्यंग्य भी इसी प्रवृत्ति पर आधारित है। गोपियों का प्रेम उद्धव के ज्ञान को मूर्खतापूर्ण सिद्ध करने में प्रयत्नशील जान पडता है।

नंददास के भँवरगीत में व्यंग्योक्तियाँ अपने तीखेपन और सीधी चोट के लिए प्रसिद्ध हैं।[४६] जो भाव साधारण वार्तालाप द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते, वे व्यंग्य के द्वारा बडी सरलता से प्रकट हो जाते हैं। गोपियाँ भी उद्धव के उथले ज्ञान की हँसी उडाकर कृष्ण तथा कुब्जा के संबंध पर व्यंग्य करती हैं।

व्यंग्य में प्रतिपक्ष को व्यथित करने का भाव रहता है। उपालंभ में अपनी हीनता, विवशता और दैन्य की अधिकता रहती है। उपालंभ में आत्मपीडन का रूप रहता है, तो व्यंग्य में पर-पीडन का रूप अधिक होता है। नंददासजी के 'भँवरगीत' में गोपियों के व्यंग्य सुंदर बन पडे हैं।

कृष्ण के प्रति गोपियों का प्यार देखकर उद्धव प्रभावित हो जाते हैं। वे अपना ज्ञान, कर्म तथा योग का उपदेश छोडकर गोपियों को प्रसन्न कराने की दृष्टि से सोचने लगते हैं। उद्धव जब इस प्रकार सोच रहे थे, उसी क्षण एक भौंरा उडता हुआ वहाँ आ पहुँचा। गोपियों के चरणों को कमल मानकर उन पर बैठ गया। यह देखकर ऐसा लगा कि जैसे उद्धव का मन ही मधुकर बनकर पहले ही प्रकट हो गया। फिर गोपियाँ भ्रमर को कृष्ण का प्रतिरूप मानकर उसके बहाने कृष्ण, उद्धव और कुब्जा को भी व्यंग्य देने लगीं। भ्रमर के आने के पहले गोपियाँ सिर्फ श्रीकृष्ण को ही उपालंभ दे रही थीं। अब योग-संदेश लानेवाले उद्धव भी व्यंग्य के लक्ष्य बन जाते हैं। उद्धव को कृष्ण ने अपने जैसा सजाकर ही भेजा था, जिससे गोपियों को कृष्ण का भ्रम हो गया था। भ्रमर आगमन के बाद उपालंभ का क्षेत्र व्यंग्य तक व्यापक हो गया। कृष्ण की निष्ठुरता के साथ उनकी रस-लोलुप वृत्ति, उद्धव का निर्गुण ब्रह्म ज्ञान तथा योग संदेश भी व्यंग्य के विषय बन गये और गोपियाँ उस भ्रमर से बातें कहने लगीं। गोपियाँ जो बातें कर रही थीं, वे वास्तव में प्रेम से पूर्ण थीं और प्रेम के कारण बनाकर कही गई थीं।

गोपियाँ पहले भ्रमर पर व्यंग्य करने लगीं। भ्रमर अपनी रसलोलुप वृत्ति के कारण प्रसिद्ध है। वह एक कली का रस चूसकर दूसरी कली पर जा बैठता है। किसी एक फूल से प्यार करने की भ्रमर की वृत्ति नहीं होती। यही कृष्ण के बारेमें भी हुआ है। कृष्ण भी यहाँ गोपियों से प्यार करते थे, अब उन्हें छोडकर, मथुरा जाकर वहाँ कुब्जा से प्यार करने लगे हैं। भ्रमर पर व्यंग्य करते हुए

गोपियाँ कहती हैं --

"तौहि भँवर सो कहत सबै प्रति उत्तर बातें ।
तर्क बितर्कनि जुक्त प्रेम रस रूपी धातें ।।
जनि परसौ मम पाय हो गयो अनँद-रस-चोर ।
तुमहीं सो कपटी हुतो नागर नंदकिसोर ।।
इहाँ ते दूरी हो ।।" ४७

गोपियाँ भ्रमर से कपटी कहते हुए वहाँ से दूर जाने को कहती हैं। वे कहती हैं, "तू रस को चुरानेवाला, रसलोभी है, तू मेरे पाँव को मत छू। कृष्ण भी तेरे ही समान कपट व्यवहार में कुशल थे।"

कुब्जा के प्रति कुछ सुनकर गोपियों में असूया भाव निर्माण हो गया। कुब्जा - प्रेम की बातों को लेकर उन्होंने कृष्ण को अनेक उपालंभ दिये। जिनमें उनका रूप-गर्व, प्रेम-गर्व, विकलता, विवशता तथा ईर्ष्या आदि सब कुछ छिपा हुआ है। किसी गोपी ने कहा, "हे मधुप, तुम्हारे स्वामी कूबरीदास कहलाते हैं। मथुरा में कुब्जा के साथ उसके दास बन रहे हैं। वास्तव में कुब्जा के नाम पर भी तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। यहाँ उन्हें 'गोपीनाथ' कहा जाता था। इसप्रकार यहाँ कृष्ण को मान सम्मान था, ऊँची पदवी थी, परंतु अब कूबरी दासी की जूठन खाकर यदुकुल पवित्र हो गया! इसपर तू भी बोलता है, मर भी नहीं जाता" --

"कोउ कहै रे मधुप तुमें लाजौ नहिं आवत ।
स्वामी तुम्हरो स्याम कूबरी दास कहावत ।।
इहाँ ऊँचि पदवी हुती गोपीनाथ कहाय ।
अब जदुकुल पावन भयो दासी-जूठन खाय ।।
मरत कहा बोल कौ ।।" ४८

आगे एक गोपी कृष्ण के होठों के लाल रंग को लेकर व्यंग्य कसने लगी --

"कोऊ कहै अहो मधुप कौन कहै तुमें मधुकारी ।
लिये फिरत विष जोग गाँठि प्रेमी-बधकारी ।।
रुधिर पान कियो बहुत कें अधर अरुन रँगरात ।
अब ब्रज में आये कहा करन कौन कौ घात ।।
जात किन पातकी ।।" ४९

"हे मधुप ! तुम्हें मधुकर कहना अच्छा नहीं लगता । तुम तो मधु याने अमृत देकर जीवनदान देने की अपेक्षा प्रेमी-जनों के वध के लिए योगरूपी विष की गाँठ लिए फिरते हो । योग तथा ज्ञान की बातों का उपदेश देकर प्रेमियों को निराश करते रहते हो । तुम्हारे होंठ लाल हैं, लगता है, तुमने अनेक पुष्पों का रक्त पान किया है और अब ब्रज में किसको मारने आये हो ? तुम यहाँ से जाते क्यों नहीं ?"

गोपियाँ भ्रमर को कृष्ण का प्रतिरूप मानकर उनके वेश साम्य के आधार पर उसकी इंद्रिय-लोलुपता पर आक्षेप करने लगीं । भौंरा काले-पीले वर्ण का है । कृष्ण ने भी अपने साँवले शरीर पर पितांबर धारण कर लिया था । कृष्ण के बाँसुरी की आवाज और किंकिणी की झंकार के समान भ्रमर की गुंजार है । इन दोनों में इसप्रकार रूप-साम्य है । "वह मथुरा से गोरस (इंद्रियानंद) लूटकर अब पुन: ब्रज में आया है । इसपर विश्वास रखना योग्य नहीं । इसका वेश भी कपटी के समान है । इसने गोपियों को पहले ही लूट लिया है और अब यहाँ से कुछ चुरा न ले जाए ।" यह गोपी कहती है --

"कोउ कहै रे मधुप भेष उनको क्यों धार्‍यो ।
स्याम पीत,गुंजार बेनु किंकिनि झनकार्‍यो ।।
बापुर गोरस चोरिकें फिरि आयो या देस ।
इनको जिनि मानो कोऊ कपटी इनको भेस ।।
चोरि जिनि जाय कछु ।।" [50]

एक गोपी व्यंग्य करते हुए भ्रमर से कहती है, "तुम हम लोगों के सामने कृष्ण के गुन मत गाओ । कपट पूर्ण हृदय से उच्च प्रेम की चर्चा अच्छी नहीं लगती । हम लोग यह अच्छीतरह से जानती हैं कि किस प्रकार कृष्ण ने हमारा सर्वस्व चुरा लिया है । ब्रज में रहनेवाली इतनी गोपियों में से एक भी तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकती । हमने ठीक से तुमको समझ लिया है"--

"कोउ- कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावें ।
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिंन छबि पावें ।।
जानति हों हरि भाँति कें सरबसु लियो चुराय ।
ऐसी बहु ब्रजवासिनी को जु तुमें पतियाय ।।
लहे हम जानिकैं ।।"[51]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रिय वस्तु को पाने की इच्छा जितनी बलवती होती है, उससे न मिलने पर आनेवाली निराशा भी उतनी ही तीव्र होती है । ऐसी अवस्था में अपमान करना, व्यंग्य आदि बातें प्रतिशोध के तौर पर मनुष्य के हाथ से होने लगती है । यही बात गोपियों के संबंध में भी हुई है । मानसिक स्थिति में ये प्रतिशोधात्मक विचार भावना के रूप में अभिव्यक्त होते हैं । गोपियों को कृष्ण की प्राप्ति नहीं हो रही है । वे भ्रमर को लक्ष्यकर कृष्ण से कहने लगी, "तुम तो बहुत चालाक हो । बहुत फूलों का रस लेते हुए फिरते हो । एक फूल से दूसरे फूल पर उडते रहते हो, किसी एक से भी तुम सच्चा प्यार नहीं करते हो । सबको अपने जैसा ही मानते हो, इसी कारण एकनिष्ठ प्रेम का रहस्य तुम्हारी समझ में कभी नहीं आयेगा । हम गोपियों को भी तुम अपने समान ही चंचल और रसलोलुप बना देना चाहते हो । तुम अपनी कपटभरी करतूतों से हम लोगों को दूषित मत करो । हम कृष्ण के सगुण रूप की उपासना करनेवाली हैं । हमारे हृदय में योग और ब्रह्म की चर्चा से संदेह निर्माण करने की कोशिश न करना ।" --

"कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस की जाने ।
बहुत कुसुम पै बैठि सबन आपुन रस माने ।।
आपुन सों हमकों कियों चाहतु है मतिमंद ।
दुबिधा रस उपजाय कें दूषित प्रेम आनंद ।।
कपट के छंद सों ।।"[52]

भ्रमर के व्याज से निर्गुण ब्रह्म का संदेश देनेवाले उद्धव का उपहास करती हुई गोपियों ने उस भौंरे के रूप पर भी ध्यान दिया --

"कोउ कहै रे मधुप प्रेमपद को सुख देख्यो ।
अबलौं यहि बिदेस माहिं कोउ नहिं बिसेष्यो ।
द्वै सिंग आनन पर जमे कारो पीरो गात ।
खल अमृत सब मानही अमृत देखि डरात ।।
बादि यह रस कथा ।।" ५३

" - प्रेम का सुख तो छः परोंवाला भ्रमर ही जानता है । अब तक इस ब्रज देश में किसी अन्य ने ऐसे विशिष्ट ढंग से इस भ्रमर के समान निर्णय नहीं लिया था । इसके मुँह पर निकली हुई दो सूँडें मानो इसके दो सींग हैं । काला -पीला उसका शरीर है । वह मूर्ख खल को याने योगमार्ग को अमृतरूपी भक्तिमार्ग समझाता है । अमृत को देखकर वह भयभीत हो जाता है । उसकी यह रसिकता व्यर्थ ही है ।"

पहले गोपियाँ श्रीकृष्ण के निर्गुण रूप के विषय में भी चर्चा कर रही थीं । तब उन्हें सरल हृदय श्रीकृष्ण के स्वभाव परिवर्तन का भी ध्यान हुआ । कृष्ण ब्रज में बडी मीठी और भोली बातें करते थे, परंतु मथुरा जाकर वे बदल गये । अब वे इतने बदल गये हैं कि उद्धव के द्वारा योग का संदेश भेजते हैं । यह सब उद्धव की संगति के कारण ही करते होंगे । यहाँ गोपियाँ उद्धव और कुब्जा पर व्यंग्य करती हैं । कृष्ण -कुब्जा प्रेम से संबंधित तो वे एक से बढकर एक सुन्दर व्यंग्य करने लगती हैं । कूबडी कुब्जा को कृष्ण-प्रेम का कारण बताती हुई वे व्यंग्य करती हैं --

"कोउ कहै रे मधुप होहिं तुम से जो संगी ।
क्यों न होइ तन स्याम सकल बातन चतुरंगी ।।
गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारी ।
मनो त्रिभंगी आपु है करी त्रिभंगी नारि ।।
रूप,गुन सील की ।।" ५४

"जिस काले शरीरवाले श्रीकृष्ण का तुम्हारे समान साथी हो, वे सभी बातों में तुम्हारे समान चालाक अवश्य बन जायेंगे । जिसका साथी ऐसा हो, उसका इतना चतुर बन जाना स्वाभाविक है ।" कृष्ण और कुब्जा के बारेमें वे

कहती हैं, "क्या गोकुल में कुब्जा के सिवा उन्हें और कोई जोडी नहीं मिली ? बस कुब्जा ही थी ? वे स्वयं मुरली बजाते समय त्रिभंगी बन जाते हैं, उसी रूप के अनुरूप कूबडी नारी कुब्जा को उन्होंने अपने योग्य पाया । कृष्ण को अपने रूप, गुण तथा शील के अनुसार गोकुल में कोई नारी नहीं मिली ।"

गोपियाँ आगे उद्धव के थोथे ज्ञान की हँसी उडाती हैं । उद्धव तथा कृष्ण पर व्यंग्य करते - करते कुब्जा पर फिर से व्यंग्य करने लगीं । ज्ञानी गुरु और शिष्य के संबंध की भी वे उपेक्षा करने लगीं । "जो गुरु उपदेश के अनुसार अपना चरित्र निर्माण नहीं करता, उसके उपदेश का प्रभाव कभी पड नहीं सकता । मथुरा में कृष्ण कुब्जा के साथ आनंद का उपभोग लेते हैं और इधर गोपियों के लिए योग का संदेश भेजते हैं, यह बात अच्छी नहीं है । वे कृष्ण योगी और तुम्हारे गुरु हैं और तुम शिष्य हो । दोनों गुरु-शिष्यों ने कुब्जा-रूपी तीर्थ में जाकर इंद्रियों का मेला लगाया है । योगी लोग तीर्थ में जाकर इंद्रिय संयम करते हैं, लेकिन तुम लोगों ने इसके विपरित वहाँ जाकर इंद्रियों का मेला लगाया है । मथुरा में तुम्हारा यह उपदेश सुननेवाला कोई नहीं था, इसकारण यह उपदेश लेकर तुम अब यहाँ आये हो ?"

"कोउ कहै रे मधुप स्याम जोगी तुम चेला ।
कुबुजा तीरथ जाइ कियौ इंद्रिन कौ मेला ।।
मधुबन सुधिहिं बिसारिकैं आये गोकुल माहिं ।
इत सब प्रेमी बसत हैं तुमरौ गाँहक नाहिं ।।
पधारौ रावरे ।।" ५५

गोपियाँ अच्छीतरह जानती हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा में रहकर कुब्जा से प्यार करते हैं । वहाँ वे स्वयं भोग में लीन रहते हैं; लेकिन इधर संदेश योग का भेजते हैं । इसप्रकार का संदेश भेजनेवाले गुरु और संदेशवाहक शिष्य का गोपियों ने बहुत सत्कार किया ।

उद्धव कृष्ण को निर्गुण ब्रह्म बताते हुए योग तथा कर्म द्वारा उनकी प्राप्ति का उपदेश देते हैं । गोपियाँ उद्धव के इस संदेश से कृष्ण के निर्गुण रूप हो जाने के विषय में कल्पना करती हैं । वे सोचती हैं, "उद्धव जैसे साधुओं की

संगति में आकर अपने सभी गुणों को त्यागकर कृष्ण निर्गुण बन गये हैं। मधुबन के साधु-संन्यासी जब ऐसे हैं, तब वहाँ के सिद्ध लोग कैसे होंगे ? ये अच्छे गुणों को छोड देते हैं और बुरे गुणों को ग्रहण करते हैं। ऐसे साधुओं की संगति में आकर कृष्ण निर्गुण हो गये होंगे "

" कोउ कहै सखी साधु मधुबन के ऐसे ।
और तहाँ के सिद्ध ह्वै हैं धौं कैसे ।।
औगुन ही गहि लेत हैं, अरु गुन डारैं मेटि ।
मोहन निर्गुण क्यों न हो उन साधुन कौं भेंटि ।।
गाँठि कौ खाइकैं ।। " ५६

किसी गोपी ने ज्ञान का उपहास करते हुए कहा " यह भौंरा अलग ज्ञान लेकर आया है । जो गोपियाँ मुक्ति की इच्छा नहीं रखतीं, उन्हें ये कर्म की बात बता रहे हैं। मुक्ति की प्राप्ति के लिए कर्म को बतलाना उल्टा ही है । ये गोपियाँ कृष्ण के गुणों को ग्रहण करनेवाली हैं, उन्हें ही ये योग की पाठशाला में आत्मशुद्धि का पाठ पढाना चाहते हैं -"

गोपियों का ध्यान काले रंग पर गया । उद्धव और भ्रमर भी काले रंग के ही हैं। भौंरे और कृष्ण के वर्ण-साम्य के आधार पर गोपियों को अवसर मिल गया । वे इस अवसर पर कृष्ण के प्रति जितने भी अपशब्द कह सकती हैं, कह डालती हैं --

" कोउ कहै सखि बिस्व माहिं जेतिक हैं कारे ।
कपट कोटि के परम कुटिल मानुस विषधारे ।।
एक स्याम तन परसि कैं आजु लौं अंग ।
ता पाछे फिरि [illegible] यह लाओ जोग भुअंग ।।
कहा इनको दया ।। " ५७

" हे सखी ! संसार में जितने काले व्यक्ति हैं, वे कपटी, कुटिल और विषैले होते हैं । उनके हृदय भी काले हैं। एक काले रंग के कृष्ण का शरीर स्पर्श करने से आज तक शरीर जल रहा है । उसमें यह काला उद्धव अब योगरूपी सर्प ले आया है ।

एक गोपी आगे कहती है, "हे भ्रमर ! लोग तुम्हें किस आधार पर प्रेमी कहते हैं, यह बात हमारी समझ में नहीं आती । तुममें तो ऐसा कोई गुण दिखाई नहीं देता । शरीर से तुम अत्यंत काले हो, पापी हो । संसार में भी तुम्हारी निंदा की जाती है । तुम अपने गुणों - अवगुणों को स्वयं समझाते हो । दर्पण लेकर तुम अपना मुँह देख लो ।"

भ्रमर को देखकर गोपियों को भ्रमर के समान रसिक कृष्ण की याद आती है। कुल की लज्जा, मर्यादा आदि सभी को त्यागकर वे कभी उद्धव पर तो कभी कुब्जा पर तो कभी कृष्ण पर व्यंग्य करने लगीं । परंतु ये व्यंग्य गोपियों की विरह - व्यथा को अधिक बढ़ा रहे थे । वास्तव में व्यंग्य और उपालंभ निर्बल के अस्त्र हैं । गोपियाँ भी कृष्ण के सामने स्वयं को असहाय मानती हैं । इन उपालंभों और व्यंग्यों से उन्हें क्षणिक शांति मिलती है; परंतु सुख-संतोष तथा चिरशांति कभी नहीं मिलती । वे कृष्ण, उद्धव तथा भ्रमर पर व्यंग्य करने लगी थीं । अपने हृदय का भार वे हलका करना चाहती हैं, परंतु इसमें वे असमर्थ होने के कारण फूट-फूटकर रोने लगती हैं --

"इहि बिधि सुमिरि गोबिंद कहत ऊधो प्रति गोपी ।
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्या लोपी ।।
ता पाछे एक बार ही रोईं सकल ब्रजनारि ।
हा ! करुनामय नाथ हो ! केसो ! कृष्ण ! मुरारि !
फाटि हिय दृग चल्यौ ।" ५८

गोपियाँ इसके साथ दीन-हीन होकर करुणामय, नाथ, कृष्ण, मुरारि कहते हुए रोने लगीं । प्रिय- वियोग के कारण अनाथ होकर वे अपने नाथ को पुकारती हैं । कृष्ण, मुरारि ही गोपियों की विरह - व्यथा को दूर करने में समर्थ हैं, इसकारण वे अपनी स्थिति से पूर्णत: परिचित करने लगीं ।

नारी हृदय में जब दु:ख की अधिकता होती है तब वे हृदय का भार

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

हल्का करने के लिए व्याकुल रहती हैं। वे आँसुओं के माध्यम से हृदय की व्यथा दूर करने का प्रयत्न करती हैं। गोपियों की आँखों से भी हृदय की धारा उमड पडी । इन आँसुओं में उनके वक्ष,चोली,हार आदि भीग गये । वे कृष्ण - प्रेम में अत्यंत व्याकुल हो गयीं । गोपियों के इस प्रेम - प्रवाह में स्थिर रहने की शक्ति उद्धव में नहीं रही । वे इस प्रेम - प्रवाह में बह चले । वे सोचने लगे कि ब्रज में गोपियों के प्यार से केवल उनका मन ही पवित्र नहीं हुआ, तो उद्धव के सारे कुल का उद्धार हो गया । जैसे नदी के किनारे का तिनका छोटी-सी लहर से भी बह जाता है, उसी प्रकार उद्धव भी गोपियों के प्रेम - प्रवाह के आगे ज्ञान-मार्ग पर स्थिर न रह सके ।

"उमग्यो ज्यों तहँ सलिल सिंधु लै तन की धारन ।
भींजत अंबुज नीर कंचुकी भूषण हारन ।।
ताही प्रेम - प्रवाह में ऊधौ चले बहाय ।
भले ज्ञान की मेड हौं ब्रज में प्रगटयौ आय ।।
कूल के तृन भये ।।" ५९

यहाँ गोपियों के प्रेम - भक्ति के सामने उद्धव अपनी पराजय स्वतः स्वीकार कर लेते हैं। इस पराजय के साथ वे गोपियों का महत्व भी मान लेते हैं। गोपियों के शुद्ध प्रेम को देखकर उद्धव के हृदय का संशय ग्लानी और मूर्खता सभी कुछ नष्ट हो गया । वे सोचने लगे कि ये गोपियाँ निश्चित ही भगवान के प्रेम की सच्ची अधिकारिणी हैं। गोपियों जैसी महान व्यक्तियों के दर्शन से उनका जन्म सफल हो गया । उद्धव का भाव - परिवर्तन करना ही 'भँवरगीत' का प्रमुख उद्देश्य है । प्रेम की पुजारी गोपियों ने शुष्क तथा अहंकारी उद्धव को अपनी प्रेमाभक्ति के आधार पर पराजित कर दिया ।

इस प्रकार नंददास के 'भँवरगीत' की गोपियों के व्यंग्य तीखे तथा सीधे चोट करनेवाले हैं।

गोपियों की इस प्रेमाभक्ति को देखकर उद्धव की आँखें खुल गईं। वे ज्ञान के आधार पर योग और कर्म की स्थापना करना चाहते थे ; लेकिन

गोपियों की कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम-भक्ति देखकर वे सब - कुछ भूल गये । कुल की लज्जा को छोडकर भगवान का भजन करनेवाली इन गोपियों को वे धन्य मानने लगे ।

गोपियों की प्रशंसा करते हुए उद्धव आगे कहते हैं कि संकुचित मर्यादाओं को त्यागकर इन गोपियों ने कृष्ण का ध्यान किया है, इसीकारण ये गोपियाँ परम-आनंद स्वरूप परब्रह्म - श्रीकृष्ण को जरूर प्राप्त करेंगी । ज्ञान और योग से भक्ति ही श्रेष्ठ है, यह मुझे गोपियों के प्रेम के कारण ही समझ में आया है । भ्रम के कारण हीरे रूपी भक्ति की काँच-रूपी योग के साथ तुलना कर रहा था , लेकिन अब मुझे इन दोनों के बीच का अंतर अच्छी तरह समझ में आया है । वे कहते हैं --

" जो ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावें ।
काहे न परमानंद प्रेम पदवी को पावैं ।।
ग्यान जोग सब कर्म तें परे प्रेम ही साँच ।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे काँच ।।
विषमता बुद्धि की ।। " ६०

उद्धव आगे कहते हैं, " ये गोपियाँ धन्य है, जो अनन्य भाव से कृष्ण का भजन करती हैं । ज्ञान के कारण मैं घमंडी बन गया था, लेकिन यह ज्ञान गोपियों के प्रेम के आगे बिल्कुल फीका है । जिसप्रकार पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसीप्रकार पारसरूपी गोपियों की संगति के कारण मैं कंचन बन गया हूँ । " इतना ही नहीं तो प्रेमरस में डूबे उद्धव ब्रज के मार्ग की धूलि बनने की कामना करने लगते हैं । वे सोचते हैं, " इसकारण मैं गोपियों के चरणों को हमेशा स्पर्श करता रहूँगा । " इससे गोपियों के चरण छूने से उनका जीवन धन्य हो जाएगा --

" पुनि कहि परसत पायँ प्रथम हौं इनहि निवाऱ्यो ।
भृंग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डाऱ्यो ।।
अब ह्वै रहौं ब्रज- भूमि को मारग में की धूरि ।
बिचरत पग मो पर धरैं सब सुख जीवनमूरि ।।
मुनिनहु दुर्लभ जो ।। " ६१

ब्रज के मार्ग की धूली बनने की कामना करने के बाद वे और एक इच्छा व्यक्त करते हैं, " मैं वृंदावन का गुल्म,लता,बेलि आदि में से कोई बन जाऊँ क्योंकि गोपियाँ जब इधर-उधर जायेंगी तो उनकी प्रतिछाया मुझ पर पडेगी। मैं मथुरा जाकर कृष्ण से यही वरदान माँगूँगा।"

इसके बाद उद्धव अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए मथुरा पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने श्रीकृष्ण से गोकुल जाकर रहने की विनती की।

नंददासजी ने गोपियों की भक्ति और कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा तथा भगवद्‌प्रेमजन्य परम विरहावस्था का उत्कट चित्रण किया है। "भक्त कवियों ने इसके द्वारा पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर, सगुण ब्रह्म की अपूर्व मनमोहिनी छवि दिखाकर एक ओर मृतप्राय जनता में प्राण फूँक दिये तो दूसरी ओर गोपी-विरह के माध्यम से उन्होंने युग - युग से पीडित नारी की मौन-व्यथा को काव्यरूप देकर व्यक्त होने का अवसर दिया।"[६२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नंददासजी के 'भँवरगीत' की गोपियों का विरह उत्कट तथा मार्मिक बन गया है। कम से कम पदों में अधिक से अधिक कहने का प्रयत्न नंददासजी ने अपने 'भँवरगीत' के माध्यम से किया है।

'भँवरगीत' में अभिव्यक्त विरह शृंगार का शास्त्रीय रूप --

संस्कृत काव्यशास्त्र में विरह की ग्यारह दशाओं का वर्णन मिलता है। कामदशाओं का वर्णन वेदना की गंभीरता दिखाने के लिए किया जाता है। विरह की कामदशाएँ इस प्रकार हैं --

१) अभिलाषा २) चिंता ३) गुणकथन ४) स्मृति ५) उद्वेग
६) प्रलाप ७) उन्माद ८) व्याधि ९) जडता १०) मूर्छा और
११) मरण।

(१) अभिलाषा --

" व्यवसाय, (काम्यजन ज्ञान) से आरब्ध, तत्संकल्पपूर्वक इच्छा (प्रिय; काम्यजन की प्राप्ति की इच्छा) से उत्पन्न प्रिय समागम के उपाय को अभिलाषा कहते हैं ।"[६३] यह काम की प्रथम दशा मानी जाती है । इस अवस्था में प्रियतम से मिलने की निरंतर इच्छा रहती है ।

" कोउ कहैं पिय दरस देहु तौ बैन सुनावौं ।
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लौन लगावौं ।।
हमकौं तुम पिय एक ही तुमकौं हमसी कोरि ।
बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि ।।
एकही बार यौं ।।"[६४]

(२) चिंता --

" किसप्रकार से प्रिय की प्राप्ति हो, कैसे वह प्रिय मेरा हो जाय, इसप्रकार का निवेदन दूती से करके वह चिंता का निदर्शन करती है ।"[६५] सोते-जागते काम करते समय गोपियों को कृष्ण की ही चिन्ता रहती है ।

" कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे ।
गोबरधन कर धारि करी रच्छा तुम कैसे ?
ब्याल, अनल, विष, ज्वाल तैं राखि लई सब ठौर ।
बिरह-अनल सब दाहि हौ हँसि-हँसि नंदकिशोर ।।
चोरि चित ले गये ।।"[६६]

(३) गुणकथन --

" अंग-प्रत्यंग की शृंगार - चेष्टाओं से, वाक्यों, क्रियाओं, हास, दृष्टि आदि से यह प्रदर्शित करना कि उसके समान कोई नहीं है - गुण कीर्तन है ।"[६७] इसमें वियोग के समय उसके गुणों का कथन किया जाता है ।

"कोउ कहे रे मधुप भेषा उनको क्यों धाऱ्यौ ।
स्याम पीत गुंजार बेनु किंकिनि झनकारयौ ।।
वापुर गोरस चोरि कै फिरिआयौ या देस ।
इनको जिनि मानौ कोउ कपटी इनको भेषा ।।
चोरि जिनि जाय कछु ।।"[68]

(४) स्मृति --

"अनुस्मृति का अर्थ है अन्य विषय का त्याग करके केवल एक का स्मरण करना ।"[69] इसमें वियोग के क्षण में पूर्व संयोग के प्रसंग का स्मरण किया जाता है ।

"जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माखन खायौ ।
पायन बिन गोसंग कहौ को बन बन धायौ ।।
आँखिन में अंजन दियौ गोबरधन लियौ हाथ ।
नंद-जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ।।
सखा सुनि स्याम के ।।"[70]

(५) उद्वेग --

"वियोग में मन का कहीं न लगना और सुखदायक पदार्थ इसमें दुखदायक प्रतीत होने लगते हैं[70] ।

"कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै ।
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिंन छबि पावै ।।
जानति हौं हरि भाँति कै सरबसु लियौ चुराय ।
ऐसी बहु ब्रजवासिनी को जु तुमै पतियाय ।।
लहे हम जानिकै ।।"[71]

(६) प्रलाप --

"प्रिय की अनुपस्थिति में उसे उपस्थित मानकर अथवा वियोग से दुःखी होकर निरर्थक बातें जब की जाती हैं, तब उसे प्रलाप कहते हैं ।इसे ही विलाप भी कहा जाता है । "यहाँ स्थित थी, यहाँ बैठी थी, यहाँ

आई-गई थी इसप्रकार के विप्रलम्भ (भाषण) विलाप के लक्षण हैं ७२

" कोउ कहैं ये निठुर इन्हैं पातक नहिं व्यापैं ।
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपैं ।।
इनके निरदै रूप मैं नाहिन कोऊ चित्र ।
पय प्यावत प्रानन हरे पुतना बाल चरित्र ।।
मित्र ये कौन के ? ।। " ७३

(७) उन्माद --

" वियोग की अवस्था में संयोगोत्सुक होकर मोहपूर्वक हँसना, रोना, प्रलाप आदि करना उन्माद कहा जाता है ---

" कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई ।
यह छलविद्या कहो कौन पिय तुमहिं सिखाई ।।
हम परबस आधीन हैं ताते बोलत दीन ।
जल बिनु कहि कैसे जियैं पराधीन जे मीन ।।
बिचारी रावरैं ।। " ७४

(८) व्याधि --

" साम, दान, अर्थ के उपभोग, प्रिय संयोगसंबंधी उद्देश्य से संप्रेषण आदि सब कुछ के विफल हो जाने पर व्याधि उत्पन्न हो जाती है । " ७५

" अहो ! नाथ ! रमानाथ औ जदुनाथ गुसांई ।
नंदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं ।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ ग्वालन सुख लेहु ।
दुख-जल-निधि हम बूड़हीं कर-अवलंब देहु ।।
निठुर ह्वै कहा रहे ? " ७६

(९) जडता --

वियोग के दु:ख से संपूर्ण इंद्रियों की गति में जडता आ जाती है ।

"सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली ।।
पुलक रोम सब अँग भए भरि आए जल नैंन ।
कंठ घुटे गद्‌गद गिरा बोल्यौ जात न बैंन ।।
विवस्था प्रेम की ।।" ७७

(१०) मूर्च्छा --

"वियोग की दशा में शरीर से संबंध सुख-दुख आदि का ज्ञान न रहना मूर्च्छा है ।"

"सुनि मोहन - सँदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ ।
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायौ ।।
विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रज बनिता मुरझाय ।
दै जल छींटे प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय ।।
सुनौ ब्रजनागरी ।" ७८

(११) मरण --

"वास्तव में प्राण-त्याग को मरण कहा जाता है, परंतु वियोग में चरम निराशा को ही मरण कहा जाता है --

"इहि विधि सुमिरि गोबिंद कहत ऊधौ प्रति गोपी ।
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्या लोपी ।
ता पाछे एक बारही रोईं सकल ब्रजनारि ।
हा ! करुनामय नाथ हो ! केसौ ! कृष्ण ! मुरारि !
फाटि हिय दृग चल्यौ ।" ७९

इसप्रकार हम देखते हैं कि `भँवरगीत` में बुद्धि और हृदय पक्ष का सुंदर समन्वय हुआ है । `लौकिक और काव्यशास्त्र की दृष्टि से उसमें एक ओर विरह की समस्त दशाओं और मनोभूमिकाओं का चित्रण हुआ है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र की विरह वेदना गोपी-भाव के अंतर्गत चित्रित की गई है, जिसमें कृष्ण-भक्तों की आध्यात्मिक विरहानुभूति के दर्शन कर सकते हैं।`[80]

नंददासजी के `भँवरगीत` और सूरदासजी के `भ्रमरगीत` की गोपियों का तुलनात्मक अध्ययन ---

`भ्रमरगीत` परंपरा हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक यह परंपरा चलती आई है । भ्रमरगीतकारों ने इसमें समय-समय पर परिवर्तन भी किये हैं। कृष्ण-भक्त कवियों ने `श्रीमद्भागवत` का आधार लेकर अपने भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है ; लेकिन इन कवियों ने इसका आधार लेते हुए भी मात्र अनुवाद नहीं किया है । कवियों की प्रतिभाशक्ति के अनुसार उद्देश्य, प्रसंग तथा साहित्यिकता की दृष्टि से उसमें बहुत अंतर आ गया है । सूरदास तथा नंददासजी ने भागवत का ही आधार लिया है । इन कवियों के युग में ज्ञानमार्गी निर्गुणवादियों तथा प्रेममार्गी सगुणवादियों में बड़ा संघर्ष चल रहा था । निर्गुणवादियों का ज्ञान-मार्ग सामान्य जनता की समझ में नहीं आता था । इन कवियों ने भ्रमरगीत के माध्यम से निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाई है । `सूर-नंददास आदि सगुण-भक्त-कवियों ने अपने भ्रमरगीतों के प्रणयन का उद्देश्य,काव्यात्मक ढंग से ज्ञान,योग और भक्ति का वाद-विवाद दिखाकर,ज्ञान-योग मार्ग तथा निर्गुण पर सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा का बना लिया ।`[81]

`भागवत` में उद्धव को कृष्ण का सखा,परमभक्त और विद्वान बताया गया है । वह सूरदास और नंददास के उद्धव की तरह निर्गुणमार्गी नहीं है ; परंतु भक्ति में ज्ञान और संयम को महत्व देनेवाला है । इन कवियों ने `भागवत` का आधार लेकर ही प्रेमलक्षणा भक्ति की महत्ता स्थापित की है। `भागवत` में

उद्धव गोपियों की प्रेम-भक्ति को आदर्श मानने लगते हैं। वे गोपियों के चरणधूलि की कामना करने लगते हैं। इसमें ज्ञान और योग के खण्डन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। 'भागवत' में मर्यादाभागीय भक्ति पर तन्मयतापूर्ण प्रेम-भक्ति की विजय है तो सूरदास, नंददास के भ्रमरगीतों में पुष्टिभक्ति की ज्ञान-योग-कर्म और निर्गुण-सगुण का विवाद नहीं है। इसकारण 'भागवत' के भ्रमरगीत प्रसंग और नंददास, सूरदास आदि के भ्रमरगीतों में अंतर दिखाई देता है। सूरदास और नंददासजी के भ्रमरगीत प्रसंगों में भी साम्य के साथ-साथ भेद भी दिखाई देता है --

साम्य --

(१) सूरदास तथा नंददास दोनों वल्लभ-संप्रदाय के भक्त थे। इसीकारण इन दोनों कवियों ने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का मार्ग सहज तथा आसान बताया है। योग और निर्गुण की अपेक्षा सगुण भक्ति की श्रेष्ठता स्पष्ट की है। इसप्रकार दोनों कवियों के भ्रमरगीतों में उद्देश्य की दृष्टि से समानता दिखाई देती है। दोनों भ्रमरगीतों की कथा में बहुतांशी समानता दिखाई देती है; परंतु सूरदासजी की कथावस्तु में भावविस्तार अधिक दिखाई देता है। इसकी अपेक्षा नंददासजी के 'भँवरगीत' का आकार बहुत छोटा है। आकार छोटा होने के कारण सूरदासजी के 'भ्रमरगीत' जैसा विस्तार नंददासजी की कथावस्तु में नहीं दिखाई देता। केवल ७५ पदों में नंददासजी ने अपने भावों को अत्यंत कुशलता से चित्रित किया है।

(२) उद्धव जब ब्रज में पधारते हैं, तब सूरदासजी तथा नंददासजी की गोपियाँ बड़े आतिथ्यपूर्वक उनका स्वागत - सत्कार करती हैं --

"अर्घासन बैठाय बहुरि परिकरिमा दीनी।
स्याम-सखा निज जानि बहुरि हित सेवा कीनी।।
बूझत सुधि नँदलाल की बिहँसत मुख ब्रज-बाल।
नीके हैं बलबीर जू, बोलत बचन रसाल।।
सखा ! सुनि स्याम के।।" ८२

सूरदासजी की गोपियाँ भी अर्घ्य देकर आरती सजाकर माथे पर तिलक लगाती हैं और उद्धव की प्रदक्षिणा करती हैं --

"अर्घ आरती साजि तिल दधि माथें कीन्यौं ।
कंचन कलस भराइ और परिकरमा दीन्हौं ।।
गोपभीर आँगन भई, मिली बैठी सब जाति ।
जल झारी आगैं धरी,पूछत हरि कुसलाति ।।" [83]

नंददासजी के उद्धव तथा सूरदासजी के उद्धव दोनों निर्गुण ब्रह्म का संदेश देने आये थे । वे कहते हैं कि ज्ञान की आँखों से देखने पर कृष्ण दिखाई देंगे । सृष्टि के कण-कण में भगवान व्याप्त हैं, पूरे ब्रह्मांड में भगवान का ही वास है ।

नंददासजी के 'भँवरगीत' और 'सूरदासजी' के 'भ्रमरगीत' की गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का विरोध करती हैं । भगवान के निर्गुण रूप पर विश्वास रखने के लिए गोपियाँ तैयार नहीं होतीं । नंददासजी की गोपियाँ कहती हैं --

"जो मुख नाहिंन हुतो कहौ किन माखन खायो ?
पायन बिन गो संग कहौ को बन-बन धायो ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोबरधन लियौ हाथ ।
नंद-जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ।।" [84]

यही भाव सूरदासजी की गोपियाँ भी व्यक्त करते हुए कहती हैं ---

"जौ तौ कर पग नहीं कहौ ऊखल क्यौं बाँधौ ।
नैन नासिका मुखन चोरि दधि कौनैं खाध्यौ ।।
तब खिलाए गोद लै कहे तोतरे बैन ।
ऊधौ ताकौं न्याउ यह जाहि न सूझै नैन ।।" [85]

(४) गोपियों की प्रेमाभक्ति देखकर उद्धव प्रभावित हो जाते हैं । कृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल बन जाती हैं । गोपियों का यह प्यार देखकर उद्धव उन्हें धन्य मानकर उनकी चरण-धूलि की कामना करने लगते हैं । इस संदर्भ में नंददास कहते हैं --

"देखत इनको प्रेम नेम ऊधौ को भाज्यौ ।।
तिमिर भार आवेस बहुत अपने जिय लाज्यौ ।।
मन में कहि रज पाँय की लै माथे निज धारि ।
परम कृतारथ ह्वै रहौं त्रिभुवन आनँद बारि ।।
बंदना जोग ए ।।" 86

सूरदास भी यही कहते हैं ---

"सुनि गोपिनि को प्रेम, नेम ऊधौ को भूल्यौ ।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनि में फूल्यौ ।।
छिन गोपिन के पग परै, धन्य तुम्हारो नेम ।
धाइ-धाइ द्रुम भेटई, ऊधो छाके प्रेम ।।" 87

(५) सूरदास और नंददासजी की गोपियाँ कुब्जा को सपत्नी ईर्ष्या भाव से देखती हैं। दोनों की गोपियों ने कुब्जा के प्रति व्यंग्य किये हैं। अपने सौन्दर्य पर गर्व करते हुए वे कुब्जा की निंदा करती हैं। नंददासजी की गोपियाँ कहती हैं --

"कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जो संगी ।
क्यों न होइ तन स्याम सकल बातन चतुरंगी ।।
गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारि ।
मनो त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि ।।
रूप,गुन सील की ।।" 88

सूरदासजी की गोपियाँ भी स्पष्ट रूप से कुब्जा की निंदा करती हुई कहती हैं ---

"मधुकर,उनकी बात हम जानी ।
कोऊ हुती कंश की दासी कृपाकरी भई रानी ।।
कुब्जा नाम मधुपुरी बैठी,लै सुबास मन मानी ।
कुटिल,कुचील जनम की टेढी,सुन्दरि करि घर आनी ।
अब वो नवलवधू ह्वै बैठी,ब्रज की कहत कहानी ।
सूर, स्याम अब कैसे पैहैं, जासों मिली सयानी ।।" 89

(७) नंददासजी की गोपियाँ कृष्ण, भ्रमर तथा उद्धव को लक्ष्य कर उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं --

"कोउ कहैं सखि बिस्व माहिं जेतिक हैं कारे ।
कपट कोटि के परम कुटिल मानुस बिभचारे ।।
एक स्याम तन परसि कैं जरत आजु लौं अंग ।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायौ जोग भुअंग ।।
कहा इनको दया ।।" [१०]

भ्रमर के काले वर्ण को लेकर सूरदासजी की गोपियों ने भी बहुत कुछ कहा है । काले रंग के प्रति उनका भी अनुभव बड़ा कटु रहा है । कृष्ण, अक्रूर, उद्धव तथा भ्रमर आदि सभी के सभी काले हैं । सूरदास की गोपियाँ उद्धव पर व्यंग्य करती हुई बड़े सरल ढंग से कहती हैं --

"बिलगि जनि मानौ ऊधो प्यारे ।
वै मथुरा काजर की कोठरि, जे आवे ते कारे ।।
तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे
तिनहूँ माँझ अधिक छबि उपजाति, कमल-नैन मनियारे ।।" [११]

इसप्रकार हम देखते हैं कि नंददासजी की गोपियों और सूरदासजी की गोपियों में साम्य दिखाई देता है । दोनों की गोपियाँ बड़ी अतिशयशील हैं । वे सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाली हैं । गोपियों के संवादों के माध्यम से दोनों कवि अपने उद्देश्य में सफल बन गये हैं । गोपी-प्रेम की व्याकुलता देखकर उद्धव प्रभावित हो जाते हैं ।

भेद --

१) नंददासजी का 'भँवरगीत' आकार से छोटा है । नंददासजी ने सूर की गोपियों की तरह हृदय की अनेक दशाओं का चित्रण नहीं किया है । इसकी अपेक्षा नंददासजी ने बाहरी अनुभावों-सात्त्विक और वाचिक के माध्यम से गोपियों के प्रेम की उत्कटता का चित्रण किया है ।

२) नंददास की गोपियाँ सूरदास की गोपियों की अपेक्षा अधिक तार्किक हैं। वे उद्धव के निर्गुण ब्रह्म, योग, कर्म की उक्तियों का सुन्दर तर्कों के माध्यम से खण्डन कर देती हैं। नंददास की गोपियों के तर्क एक से बढ़कर एक बन गये हैं। अपने तर्कों से नंददास की गोपियाँ उद्धव को पराजित कर देती हैं। इसके विपरित सूरदासजी की गोपियाँ भोली-भाली हैं। वे तर्कों को जानती ही नहीं। वे उद्धव से विनती करती हैं कि कुछ ऐसी बात बताओ, जिससे प्यार मिले। सूर के उद्धव तर्क समझा ही नहीं पाते, इसकारण उनके पराजित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह नंददास के भ्रमरगीत की अपनी विशेषता हैं। जहाँ भागवत की गोपियाँ भोली-भाली ग्रामीण स्त्रियाँ हैं, कृष्ण के प्रेम में पूर्णतः निमग्न हैं, उनमें सूर की गोपियों-की-सी अधीरता और वाक्चातुर्य भी नहीं है, वे उद्धव के कथन से संतुष्ट-सी हो जाती हैं, वहाँ नंददास की गोपियाँ वाक्चातुर्य से पूर्ण बुद्धिवादी नारियाँ हैं। वे सूर की गोपियों की तरह भावुक और प्रेमपगी भी हैं और इसकारण वे अपने प्रेम-विदग्ध हृदय से प्रेम के तर्क भी उपस्थित करती हैं, किन्तु उसके साथ-साथ वे शास्त्रिय तर्कों द्वारा ज्ञानी, निर्गुणवादी उद्धव को परास्त करती हैं।[६२]

३) नंददास के भँवरगीत की गोपियाँ अकाट्य तर्कों द्वारा ज्ञान, योग, कर्म के विरोध में बातें करती हैं। योगमार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग का महत्व स्थापित करती हैं। सूर के भ्रमरगीत में गोपियाँ खूब मुखर और उद्धव प्रायः चुप रहे हैं। वे आरंभ से लेकर अंत तक शांत, धीर, गंभीर, स्नेहशील, शिष्ट प्रवृति को न छोडते हुए अपने भावुकतापूर्ण व्यंग्यों द्वारा निर्गुण से सगुण को श्रेष्ठ स्थापित करती हैं।

४) सूर की गोपियाँ ग्रामीण वातावरण में पली हुई हैं, तो नंददास के भँवरगीत की गोपियाँ ब्रजनागरी हैं। सूर की गोपियाँ भावुक बनकर निर्गुण का काँटा निकाल फेंकती हैं, तो नंददासजी की गोपियाँ तर्क द्वारा काँटे से काँटा निकाल कर निर्गुण के स्थान पर सगुणोपासना

का महत्व सिद्ध करती हैं। नंददास ने अपने आचार्यत्व के भरोसे उद्धव को ज्ञान-प्रदर्शन का पूरा-पूरा अवसर दिया है और गोपियों द्वारा उनके मंतव्यों का शब्द-शब्द खण्डन कराया है। नंददास के भँवरगीत में उद्धव की पराजय कसौटी के बाद की पराजय है, अत: वह स्वाभाविक लगती है; पर सूर उद्धव की पराजय तर्क समर्थित या तर्कसिद्ध नहीं कर पाये हैं। उनके भ्रमरगीतों में उद्धव की पराजय पर कवि का पूर्वाग्रह हावी होता हुआ दिखाई देता है। "[९३]

५) सूर की गोपियाँ विरह में पूर्णत: मग्न हैं, किन्तु नंददास की गोपियाँ विरह में भी संयोग मान लेती हैं। वे विरह के समय भी अपने बीते समय के संयोग का स्मरण करके जैसे उसका अनुभव भी करने लगती हैं। केवल नंददासजी ने ही विरह का ऐसा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

६) सूरदास की अपेक्षा नंददासजी ने अपनी गोपियों के माध्यम से पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप अत्यंत स्पष्ट रूप में अंकित किया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि सूरदासजी की गोपियों की अपेक्षा नंददासजी की गोपियाँ अनेक बातों में सरस हैं।

निष्कर्ष ---

नंददासजी का 'भँवरगीत' विरह काव्य का एक सुन्दर नमूना है। सिर्फ ७५ पदों में नंददासजी ने सगुण-निर्गुण वाद तथा गोपियों के विरह का उत्कट चित्रण किया है। गोपियों की अनेक चारित्रिक विशेषताएँ इसमें दिखाई देती हैं।

नंददासजी के गोपियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी तार्किकता है। वे भोली-भाली नहीं हैं, तो बुद्धिमानी, पंडिता तथा विदुषी भी हैं। उद्धव निर्गुण ब्रह्म का संदेश देने आये थे। वे योग, ज्ञान, कर्म आदि संबंधी सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। गोपियाँ ज्ञान और कर्म दोनों का खण्डन करती हैं, क्योंकि

ज्ञान मार्ग कठिन है तथा कर्म मार्ग में फल की अपेक्षा लगी रहती है । इसकारण ये दोनों मार्ग योग्य नहीं हैं । प्रेम के बिना ये दोनों मार्ग गोपियों को निरर्थक लगते हैं । गोपियाँ सगुणोपासक होने के कारण वे उद्धव की बातों पर विश्वास नहीं रखतीं । वे प्रेमा-भक्ति पर विश्वास रखनेवाली हैं । इसकारण वे सुन्दर तर्कों द्वारा उद्धव को पराजित कर देती हैं । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्यार देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व दूर हो जाता है । वे कृष्ण का गुणगान छोडकर गोपियों का गुणगान करने लगते हैं ।

नंददास की गोपियाँ पुष्टिमार्गीय हैं । नंददासजी ने अपनी पुष्टिमार्गी भक्ति में प्रेमलक्षणा भक्ति को श्रेष्ठ माना है । गोपियों ने कृष्ण भक्ति के लिए लोक-लज्जा, मर्यादा, कुल, धर्म आदि को त्याग दिया है । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्यार आत्मसमर्पणकारी है । उनका यह प्यार देखकर उद्धव प्रेमाभक्ति की कामना करते हैं । इतनाही नहीं तो उद्धव मथुरा जाकर गोपियों की प्रेमदशा का वर्णन करते हैं और कृष्ण से ब्रज में जाकर रहने की बिनती करते हैं ।

नंददासजी के `भँवरगीत` में विरह शृंगार के अंतर्गत रसव्यंजना का सुंदर परिपाक दिखाई देता है । रसावयवों की दृष्टि से इसमें स्थायी भाव रति है, आश्रय गोपियाँ और आलंबन श्रीकृष्ण है । रोमांच, अश्रु, स्वरभंग आदि सात्विक अनुभावों का नंददासजी ने सुन्दर चित्रण किया है । स्मृति, असूया, दैन्य आदि संचारी भाव इसमें दिखाई देते हैं । उद्दिपन के रूप में कृष्ण के स्थान पर उद्धव का ब्रज में आना, ज्ञान से युक्त बातें तथा भ्रमर प्रसंग आदि का वर्णन है । गोपियों का विरह प्रवास के कारण हुआ है । इसमें गोपियाँ मान करती हुई भी दिखाई देती हैं ।

नंददासजी के `भँवरगीत` में गोपियों के व्यंग्य तथा उपालंभ स्वाभाविक बन पडे हैं । इन उपालंभों और व्यंग्यों के माध्यम से गोपियों का

अनन्य प्रेम ही प्रकट होता है। वियोग में भी गोपियाँ संयोग का अनुभव करती हैं और भगवान कृष्ण के प्रति उपालंभ देने लगती हैं। उनके ये उपालंभ कृष्ण के प्रति और विष्णु के विभिन्न अवतारों - राम, वामन, परशुराम, नरसिंह आदि के प्रति हैं।

कुब्जा के प्रति गोपियों के व्यंग्य तीखे तथा मार्मिक बन गये हैं। सपत्नी ईर्ष्या भाव से वे कुब्जा पर व्यंग्य करती हैं। वे कुब्जा के रूप, गुण, शील आदि के संबंध में कटु बातें कहती हुई उसका अपमान करती हैं। कुब्जा के साथ-साथ भ्रमर तथा उद्धव पर भी व्यंग्य करती हैं। इन उपालंभों तथा व्यंग्यों से उनका विरह बिलकुल कम नहीं होता, उन्हें शांति नहीं मिलती बल्कि दीन होकर वे कृष्ण का नाम लेकर फूट-फूटकर रोने लगती हैं। यहाँ गोपियों के भावों की चरमसीमा दिखाई देती है।

नंददासजी के 'भँवरगीत' में विरह की सभी दशायें दिखाई देती हैं।

इन विशेषताओं के सिवा ये गोपियाँ अतिशयशील, सर्वगुणसंपन्न तथा नारी-सुलभ भावप्रवणता से युक्त हैं।

नंददास तथा सूरदासजी के गोपियों की तुलना की दृष्टि से देखा जाए तो इन दोनों कवियों ने गोपियों के माध्यम से ज्ञान, योग, कर्म तथा निर्गुण पर प्रेम, भक्ति और सगुण की विजय दिखलायी है। ये गोपियाँ सगुण ब्रह्म का महत्व प्रतिपादित करती हैं।

नंददासजी के 'भँवरगीत' का आकार बहुत छोटा होने के कारण सूरदासजी के 'भ्रमरगीत' की तरह गोपियों के विविध भावों का विस्तार नंददासजी ने नहीं किया है। फिर भी नंददासजी ने गोपियों के सात्विक और वाचिक अभिनय का उत्कट चित्रण किया है। नंददासजी की गोपियाँ सूरदासजी की गोपियों की अपेक्षा अधिक तार्किक हैं। वे सूर की गोपियों की तरह भोली-भाली नहीं हैं। नंददासजी की गोपियाँ अपने सुन्दर तर्कों के माध्यम से उद्धव को पराजित कर देती हैं। विरह में भी संयोग मान लेने की नंददासजी की गोपियों की कल्पना सभी भ्रमरगीतकारों से अलग तथा नवीन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) भँवरगीत विमर्श
डॉ. भगवानदास तिवारी
स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्र. सं. १९७२
पृ. क्र. १४३

२) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
प्र. सं. २००६
पृ. क्र. १५२

३) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ. क्र. १५२

४) नंददास
कामताप्रसाद साहू
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
प्र. सं. १९६६
पृ. क्र. १०९

५) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
प्र. सं. २००६
पृ. क्र. १५२

६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५७

७) नंददासकृत रासपंचाध्यायी और भँवरगीत
प्रो. विश्वंभर 'अरुण'
अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली-६
प्र.सं. १९६६
पृ.क्र. ४७

८) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५४

९) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५५

१०) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५६

११) हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन मंदिर,अलिगढ
प्र.सं.
पृ.क्र. २६५

१२) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५४

१३) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५४

१४) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५५

१५) हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन मंदिर,अलिगढ
प्र.सं.
पृ.क्र. २९७

१६) भँवरगीत विमर्श
डॉ.भगवानदास तिवारी
स्मृति प्रकाशन ,६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्र.सं. १९७२
पृ.क्र. १४२

१७) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६४

१८) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६४

१९) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६४

२० नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६५

२१) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा ,काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १८०

२२) काव्यशास्त्र
भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
पंचम संस्करण संवत् - २०२९ वि
पृ.क्र. २३०

२३) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी
प्र. सं. संवत् २०२४
पृ.क्र. १५८

२४) काव्यशास्त्र
भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
पंचम संस्करण - संवत् २०२९ वि
पृ.क्र. २३०

२५) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन वाराणसी
प्र. सं. संवत् २०२४
पृ.क्र. १६६

२६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५२

२७) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५३

२८) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १६३

२९) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

३०) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५७

३१) हिंदी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन मंदिर, अलिगढ
प्र. सं.
पृ.क्र. १४१

३२) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५७

३३) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५७

३४) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५७-१५८

३५) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

३६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

३७) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

३८) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

३९) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

४०) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५९

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

४१) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५९

४२) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५९

४३) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५९

४४) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५९

४५) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५९-१६०

४६) नंददास
कामताप्रसाद साहू
विनोद पुस्तक मंदिर आग्रा,
प्र.सं. १९६६
पृ.क्र. ९२-९३

४७) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६०

४८) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६०-१६१

४९) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५०) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५१) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५२) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५३) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५४) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

५५) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६२

५६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६२

५७) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६२-१६३

५८) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६३

५९) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६३

६०) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६४

६१) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १६४

६२) नंददास का भँवरगीत : विवेचन और विश्लेषण
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
चौखम्बा प्रकाशन, कानपुर. प्र. सं. 1962
पृ.क्र. ६८

६३) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी
प्र. सं. संवत् २०२४
पृ.क्र. ७५

६४) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

६५) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी
प्र. सं. संवत् २०२४
पृ.क्र. ७५

६६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र. सं. २००६
पृ.क्र. १५८

६७) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन,वाराणसी
प्र.सं.संवत् २०२४
पृ.क्र. ७६

६८) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

६९) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन,वाराणसी
प्र.सं.संवत् २०२४
पृ.क्र. ७६

७०) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५४

७१) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६१

७२) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन,वाराणसी
प्र.सं.संवत् २०२४
पृ.क्र.७७

७३) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं.२००६
पृ.क्र.१५८

७४) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं.२००६
पृ.क्र.१५७-१५८

७५) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
डॉ.इंद्रपाल सिंह
चौखंबा प्रकाशन,वारणासी
प्र.सं.संवत् २०२४
पृ.क्र.७७

७६) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं.२००६
पृ.क्र.१५७

७७) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५२

७८) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५३

७९) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६३

८०) भँवरगीत विमर्श
डॉ. भगवानदास तिवारी
स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्र.सं. १९७२
पृ.क्र. १५४

८१) अष्टछाप और नंददास
डॉ. कृष्णदेव झारी
इतिहास शोध संस्थान, ३११, भुलभुलैयां रोड, महरौली
प्र.सं. १९८५
पृ.क्र. १४४

८२) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५२

८३) सूरसागर (दूसरा खण्ड)
संपा. नंददुलारे बाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
तृतीय संस्करण - संवत् २०१८ वि.
पृ.क्र. १४७६

८४) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १५४

८५) सूरसागर (दूसरा खण्ड)
संपा. नंददुलारे बाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
तृतीय सं. संवत् २०१८ वि
पृ.क्र. १४७६

८६) नंददास ग्रंथावली
संपा. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्र.सं. २००६
पृ.क्र. १६०

८७) सूरसागर
संपा.नंददुलारे बाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
तृतीय सं.संवत् २०१८ वि
पृ.क्र.१४७७

८८) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं.२००६
पृ.क्र.१६२

८९) सूरसागर
संपा.नंददुलारे बाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
तृतीय सं.संवत् २०१८ वि
पृ.क्र.१३५८

९०) नंददास ग्रंथावली
संपा.ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
प्र.सं.२००६
पृ.क्र.१६२-१६३

९१) सूरसागर
संपा.नंददुलारे बाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
तृतीय संस्करण - संवत् २०१८ वि
पृ.क्र.१३८६

१२) अष्टछाप और नंददास
डॉ.कृष्णदेव झारी
इतिहास शोध संस्थान, ३१११, भूलभुलैयां रोड, महरौली, नई दिल्ली,
प्र.सं. १९८५
पृ.क्र. १४४

१३) भँवरगीत विमर्श
डॉ.भगवानदास तिवारी
स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्र.सं. १९७२
पृ.क्र. १२८ ।